ज्योति शिखा

मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥

Summit

बम्बई में भारतीय विद्याभवन के प्रांगण में प्रोग्रेसिव ग्रुप द्वारा आयोजित सभामें व्याख्यान देते हुए आचार्य श्री रजनीशजी (तस्वीरमें दायें ओर से बैठे हुए सर्वश्री जटुभाई मेहता, दुर्लभजीभाई खेताणी, चिमनलाल सी. सेठ, आ० श्री रजनीशजी, भूपेन्द्रभाई शाह, धीरुभाई कापड़िया और मधु दलाल)

"ज्योति शिखा"

आचार्य श्री रजनीश की अमृतवाणी का त्रैमासिक संकलन

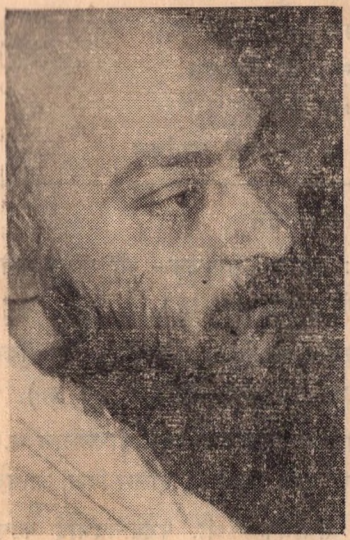

- नवां संकलन
- जून, १९६८
- मानार्ह संपादक :

  श्री जटुभाई महेता

*

- संपादक मंडल :

  श्री दुर्लभजीभाई खेताणी

  श्रीमती पूर्णिमाबहन पकवासा

*

- मुद्रक–प्रकाशकः

  श्री रमणलाल सी. शाह

  जीवन जागृति केन्द्र

  ५०५, कालबादेवी, बंबई–२

*

- मुद्रणस्थानः

  स्टेट्स पीपल प्रेस,

  गोधा स्ट्रीट, बम्बई १

*

- मूल्य : वार्षिक रु. ५–००

  एक प्रतिः रु. १–२५ पै.

अनुक्रमिका

क्रमांक	विषय	संकलक	पृष्ठ
१	भारत का भविष्य : प्रवचन:	श्री कमलाकांत पाठक	३
२	हृदय की पगडंडियां : चर्चाओं से :	सुश्री क्रांति	२०
३	क्या ईश्वर मर गया है ? प्रवचन :	श्री अनूप सेठ	२५
४	सरलता है सत्यका द्वार : प्रवचन :	श्री निकलंक	४४
५	मनुष्यता और नारी : प्रवचन :	श्री अरविंद	६५
६	समाचार विभाग : आचार्य श्री के देशव्यापी कार्यक्रम		७८

आचार्य श्री के आगामी देशव्यापी कार्यक्रम

२०–२१–२२–२३ जुलाई : इंन्दौर : सत्संग : संयोजक– श्री राजमलजी जैन, ९२, जवाहर मार्ग, इन्दौर. (म. प्र.)

१२–१३–१४–१५ अगस्त : वाराणसी : सत्संग : संयोजक– श्री विमला–नंदन प्रसाद, १४४, दारानगर, वाराणसी (उ. प्र.)

२५–२६–२७ अगस्त : अहमदाबाद : प्रवचन : संयोजक– डॉ. धीरजलाल ध. शाह, जैन युवक संघ, गांधीकुंज सोसायटी, एलिस ब्रिज, अहमदाबाद

२८ अगस्त : बंबई : प्रवचन : संयोजक– श्री. परमानंदभाई कापडिया, मुंबई जैन युवक संघ, धनजी स्ट्रीट, बंबई–३.

५–६–७ सितंबर : पटना : सत्संग : संयोजक : श्री मथुराप्रसादजी मिश्र, रोड नं. १, राजेन्द्रनगर, पटना–४

१७–१८–१९ सितंबर : बड़ौदा : सत्संग : संयोजक:– श्री. बचुभाई सुतरिया एडवोकेट, आल इंडिया रेडिओ के निकट, बड़ौदा.

२८–२९–३० सितंबर, १–२ अक्टूबर : बंबई : ज्ञानसत्र : संयोजक– जीवन जागृति केन्द्र, ५०५ कालबादेवी रोड, बंबई–२, और ईस्टर्न चेम्बर्स, रुम नं. २९, कोर्नर आफ पूना स्ट्रीट, बंबई–९

१३–१४–१५ अक्टूबर : नवसारी : सत्संग : संयोजक, श्री. जयंतीलाल बादशा, खत्रीवाड, नवसारी.

१–२–३ नवंबर : नारगोल, साधना शिबिर, संयोजक : जीवन जागृति केन्द्र, बंबई.

२८–२९–३० नवंबर : सुरेन्द्रनगर : सत्संग: संयोजक : श्री नरोत्तमदास शाह, सर्वोदय सोसायटी, सूरेन्द्रनगर.

भारत का भविष्य

(एक प्रवचन)

संकलन : श्री. कमलाकांत पाठक

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं।

बहुत पुराने दिनों की घटना है। छोटे से गांव में एक बहुत संतुष्ट गरीब आदमी रहता था। वह सन्तुष्ट था इसलिए सुखी भी था। उसे पता भी नहीं था कि मैं गरीब हूं। गरीबी केवल उन्हें ही पता चलती है जो असन्तुष्ट हो जाते हैं। सन्तुष्ट होने से बड़ी कोई सम्पदा नहीं है, कोई समृद्धि नहीं है। वह आदमी बहुत सन्तुष्ट था इसलिए बहुत सुखी था, बहुत समृद्ध था। लेकिन एक रात अचानक दरिद्र हो गया। न तो उसका घर जला, न उसकी फसल खराब हुई, न उसका दिवाला निकला। लेकिन एक रात अचानक बिना कारण वह गरीब हो गया। आप पूछेंगे, कैसे गरीब हो गया? उस रात एक सन्यासी उसके घर मेहमान हुआ और उस सन्यासी ने हीरों के खदानों की बात की और उसने कहा, पागल तू कबतक खेती बारी करता रहेगा। पृथ्वी में हीरों की खदाने भरी पड़ी हैं। अपनी ताकत उन हीरों की खोज में लगाओ, तो जमीन पर सबसे बड़ा समृद्ध तू हो सकता है। समृद्ध होने के सपने ने उसकी रात खराब कर दी। वह आज तक ठीक से सोया था। आज रात ठीक से न सो पाया। रात भर जागता रहा और सुबह उसने पाया कि एक दिन दरिद्र हो गया, क्योंकि असंतुष्ट हो गया था। उसने अपनी जमीन बेच दी, अपना मकान बेच दिया। सारे पैसे को इकट्ठा कर वह हीरे की खदान की खोज को निकल पड़ा। सुनते हैं १२ वर्षा तक जमीन के कौने कौने में उसने खोज की, और उसकी

सम्पत्ति समाप्त हो गई। अक्सर यह होता है कि पराई सम्पत्ति की खोज में लोग अपनी सम्पत्ति गंवा बैठते हैं। उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। वह दर दर का भिखारी हो गया। वह सड़कों पर भीख मांगने लगा और सुनते हैं एक बड़े नगर में एक दिन भूख के कारण ही उसकी मृत्यु हो गई। वह मर गया। बारह वर्ष बाद वह सन्यासी उस गांव में फिर आया। जिसने उस समृद्ध आदमी को दरिद्र कर दिया था। उसके घर के पास पहुंचा और उसने जाकर पूछा कि यहां अली हफ़ीज नामक एक आदमी रहता था, वह यहां रहता है? लोगों ने कहा वह तो बारह वर्ष हुए जिस रात आपने यह घर छोड़ा उसके दूसरे दिन सुबह उसने घर छोड़ दिया। वह हीरों की खोज में चला गया और अभी अभी खबर आयी है कि वह भिखमंगा हो गया और भूखा एक महानगरी की सड़क पर वह मर गया। यह जमीन और मकान हमने खरीद लिया था। हम इसके निवासी हो गये हैं। उस सन्यासी ने उससे पीने के लिए पानी मांगा और थोड़ी देर उस झोपड़ी में रुका। उसने देखा कि उस झोपड़े के आले में एक बहुत चमकदार पत्थर रखा हुआ है। उसने उस किसान से पूछा कि यह क्या है? उसने कहा यह मेरे खेत पर था जो मैंने अलीहफ़ीज से खरीदा था, वहां पड़ा मिल गया। उसने कहा यह तो हीरा है। क्या उसी जमीन पर मिल गया है जिस जमीन को बेंचकर अलीहफीज चला गया है? उसने कहा हां उसी जमीन पर। लेकिन यह हीरा नहीं है, केवल चमकदार पत्थर है और हमने बच्चों को खेलने के लिए उठा लिया है। उस सन्यासी ने उस पत्थर को उठाया। उसकी आखें चमक उठी। वह हीरे को पहचानता था। उसने कहा, चल तेरे खेत पर। वे खेत पर गये। वहां एक छोटा सा नाला बहता था। जिसपर सफेद रेत थी। उस रेत में उन्होंने खोजबीन शुरू की और सांझ होते होते कई हीरे उनके हाथ लग गये। वह अलीहफीज की जमीन थी जो दूसरे की जमीन पर हीरे खोजने चला गया था। शायद आपने यह कथा न सुनी हो। वही जमीन अलीहफीज की गोलकुंडा बन गई। उसी जमीन पर कोहनूर हीरा मिला और अलीहफीज जो उस जमीन का मालिक था एक बड़ी नगरी में भिखमंगा हो गया। वह हीरे की खोज में चला गया था, लेकिन उसे कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि जो मेरी जमीन है वहीं हीरे की खदानें भी हो सकती हैं। वहीं से कोहनूर भी निकल सकता है।

भारत के भविष्य में भी यह कहानी दौड़ेगी। या तो भारत अपनी जमीन पर हीरे खोज लेगा या तो दूसरे की जमीनों पर भिखमंगा होकर मर जाएगा।

यह तो मैं पहली बात कह देना चाहता हूं। और मैं आपको यह बात भी कह दूं कि भारत ने भिखमंगा होने की दौड़ शुरू कर दी है। भारत भिखारी की तरह दुनिया के सामने खड़ा हो गया है। हम भीख मांग रहे हैं और जो कौम भीख मांगने लगती है उस कौम का भीख मांगने के बजाय मर जाना बेहतर है। उसके जीने की कोई जरूरत नहीं है। यह उचित होगा कि हम मर जाय भूखे और दरिद्र, लेकिन अपने घर में। बजाय इसके कि हम समृद्ध मकान दूसरे से उधार मांग लें, दूसरे से भीख मांग लें और हम जीते रहें। ऐसा जीना अत्यन्त बेशर्मी का जीना है। यह मुल्क बेशर्मी के लिए रोज रोज तैयार होता जा रहा है और जिस कौम की शर्म मर जाती है और जिसे भीख मांगने की तरकीबें और आर्ट पता हो जाय उस कौम का कोई भविष्य नहीं। स्मरण रखना चाहिए उसका भविष्य है ही नहीं। उसके भविष्य में कोई सूरज नहीं उगेगा और उसकी बगिया में कभी कोई फूल नहीं खिलेगा और उसके भीतर जो भी आत्मा है वह धीरे धीरे विलुप्त हो जाएगी और हम मुर्दा लोगों की तरह, मुर्दा कौम की तरह जमीन पर बोझ बनकर रह जाएंगे। हमने यह शुरूआत कर दी है। यह दुर्भाग्य की कथा प्रारम्भ हो गई है।

पहली बात तो मुझे यह कहना है और वह यह कि सम्मान से मर जाना भी बेहतर है अपमानपूर्ण जीने से। देश के कौने कौने में एक-एक आदमी से यह बात कह देने की जरूरत है कि भारत जियेगा तो सम्मान से अन्यथा मर जाएगा। हम मर जाना पसन्द करेंगे। लोग कम से कम यह तो कह सकेंगे कि एक कौम थी जिसने भीख नहीं मांगी लेकिन मर गई। लेकिन इतिहास में कहीं एक काली बात न लिख जांय कि एक कौम थी जो भीख मांगकर जीना सीख गई और जीती रही। भारत का भविष्य उसके भिखमंगेपन के साथ जुड़ा हुआ है। हम क्या करेंगे, इसपर बहुत कुछ निर्भर करता है। कोई हर्जा नहीं कि बिहार के लोग भूखे मर जांय, कोई हर्जा नहीं कि पचास करोड़ लोगों में दस पांच करोड़ लोग न जीयें। वे कब्रिस्तान में चले जांय कोई हर्जा नहीं। लेकिन घुटने टेक के सारी दुनियां से भीख मांगना अत्यन्त आत्मग्लानिपूर्ण आत्मघाती है और हम अपनी आत्मा को बेच रहे हैं और फिर जब देश का चरित्र नीचे गिरता है और जब देश के प्राण नीचे उतरते हैं तो हम चिल्लाते हैं कि चरित्र नीचे गिर रहा है। लोग नीचे होते जा रहे हैं। लेकिन जब पूरी कौम भीख मांगने पर उतारू हो जाएगी तो मनुष्यों का, व्यक्तियों का चरित्र ऊपर नहीं उठ सकता है। पूरे मुल्क का जब कोई गौरव नहीं होगा, कोई सम्मान नहीं होगा, कोई

आत्मनिष्ठा नहीं होगी तो एक एक व्यक्ति की आत्मनिष्ठा नीचे गिर जाएगी। और हमें पता है हमारे मुल्क में बहुत लोग हैं जो भीख मांगते रहे हैं लेकिन कभी उन भिखमंगों ने यह न सोचा होगा कि विकास इतना हो जाएगा कि धीरे धीरे पूरा मुल्क ही भीख मांगने लग जाएगा। उनको भी इसका कोई पता नहीं था। लोग अब इस अवस्था में खड़े हो गये हैं और एक बड़ा मजा है। यह शायद आपको पता नहीं होगा। जिस आदमी को आप भीख देते हैं वह आदमी कभी भी आपको क्षमा नहीं करता है। इसे एक बार फिर से दोहरा दूं, जिस आदमी को आप भीख देते हैं वह आदमी कभी आपको क्षमा नहीं कर सकेगा। ऊपर से धन्यवाद देगा लेकिन उसके प्राणों में आपके प्रति अभिशाप ही होगा, निन्दा होगी, घृणा होगी, ईर्ष्या होगी, अपमान का भाव होगा। क्योंकि भीख लेने वाला कभी भी यह अनुभव नहीं करता है कि मैं अपमानित नहीं किया गया हूं। भीख लेने वाला हमेशा अपमानित अनुभव करता है और उसका बदला लेता है। भारत आज सारी दुनिया के सामने हाथ जोड़कर भीख मांग रहा है और इसका बदला वह ले रहा है सारी दुनिया से। एक तरफ भीख मांगता है और दूसरी तरफ कहता है हम जगत्गुरु हैं। एक तरफ भीख मांगता है और दूसरी तरफ गाली देता है पश्चिम को। भौतिकवादी और मैटिरियलिस्ट कहता है उसको। एक तरफ भीख मांगता है दूसरी तरफ अपने गौरव को बचाने का झूठा प्रयास करता है। भिखमंगों की यह पुरानी आदत है भिखमंगे अक्सर यह कहते सुने जाते हैं कि हमारे बाप दादा सम्राट थे। जिनके पास कुछ भी नहीं बचता है वे फिर मां बाप की पुरानी कथाओं को खोजकर निकाल लेते हैं और उनका गुणगान करते हैं। समझ लेना भलीभांति जिस आदमी का वर्तमान नहीं होता है वही केवल अतीत की बातें करता है। और जिसका कोई भविष्य नहीं होता है वही केवल ही अतीत की पूजा और गुणगान में समय व्यतीत करने लगता है। हम निरंतर अतीत का ही गुणगान करते हैं। जो बीत गया है उसी का।

क्या हमारा कोई भविष्य नहीं है? या कि हमारा कोई अभिमान नहीं है। क्या हम जी चुके और समाप्त हो गये। हमारा बीता हुआ (Past) बस वही सब कुछ है। आगे हमारा कुछ भी नहीं है। शायद आपको ख्याल में न हो। छोटा बच्चा पैदा होता है तो उसका कोई अतीत नहीं होता है, उसका भविष्य होता है, सिर्फ भावि (Future) होता है। जवान, जवान के पास अतीत भी होता है, वर्तमान भी होता है और भविष्य भी होता है, लेकिन बूढ़े के पास

सिवाय अतीत के कुछ भी नहीं होता है। भविष्य नहीं होता, वर्तमान भी नहीं होता है। यह कौम बूढ़ी हो गई है क्या ? इसके पास सब बीती हुई कथाएं हैं। गौरव गाथाएं। इसके पास अपना कोई वर्तमान नहीं। भविष्य की कोई योजना आकांक्षा और कल्पना नहीं, कोई आशा नहीं। भविष्य की अगर कोई स्पष्ट प्राणों में ऊर्जा और कल्पना और आकांक्षा न हो, भविष्य का कोई स्पष्ट सपना न हो तो देश बिखर जाते हैं, कौमें बिखर जाती हैं खंडित (Disintegrated) हो जाती हैं। हमारे पास भविष्य की कोई योजना नहीं है, भविष्य की कोई कल्पना नही है, कोई सपना नहीं है। भविष्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं है और इधर बीस वर्षों में हमने और भी सब अस्पष्ट कर दिया है। हम दुनिया में तटस्थ कौम की तरह खड़े हो गये हैं और हम कहते हैं कि हम न्युटुलिस्ट हैं, हम तटस्थ खड़े होने वाले लोग हैं। लेकिन आपको पता है, जीवन में तटस्थता का कोई अर्थ नहीं होता। जीवन तो प्रतिबद्धता (Commitment) में है। जीवन है सम्मिलित होने में। किनारे पर खड़े होने में नहीं। और जो किनारे पर खड़ा होता है और जो कहता है कि हम तटस्थ हैं और जीवन की जो धारा है उसमें हम तटस्थ और किनारे पर खड़े हैं वह किनारे पर ही खड़ा रह जाएगा। जीवन की धारा उसे छोड़कर आगे बढ़ जाएगी। मेरी दृष्टि में अगर भारत तटस्थता की बातें आगे भी कहे चला जाता है तो भारत का कोई भविष्य नहीं हो सकता है। भारत के भविष्य के निर्माण में भारत को पक्षबद्ध होना ही चाहिए। उसके निश्चित स्पष्ट मत होने चाहिए। जीवन की धारा से उसकी प्रतिबद्धता, उसका कमिटमेन्ट होना चाहिए। उसके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि वह समाजवाद लाना चाहता है या लोकतंत्र। उसके सामने यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह एक वैज्ञानिक जीवन दृष्टि विकसित करना चाहता है या नहीं। उसके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि धर्म की क्या कल्पना और क्या रूपरेखा है भविष्य में। लेकिन धर्म को ध्यान में रखकर भारत निरपेक्ष है और राजनीति को ध्यान में रखकर भारत तटस्थ है। तो समझ लेना कि जीवन को ध्यान में रखकर भारत को अगर मृत होना पड़े, मर जाना पड़े तो जिम्मा किसी और को मत देना। जो मुर्दे हैं वे ही केवल निरपेक्ष और तटस्थ हो सकते हैं। जीवित व्यक्ति को निरपेक्ष होने की सुविधा नहीं है। उसे निर्णय (Judgement) लेने होते हैं, उसे चुनाव (Choice) करना होता है, उसे मत में बद्ध होना होता है। उसे किसी चीज को ठीक और किसी चीज को गलत कहना होता है। जो लोग चीजों के गलत और ठीक होने का

निर्णय लेना छोड़ देते हैं, धीरे धीरे जीवन का रास्ता उनके लिए नहीं रह जाता है। उनके ऊपर केवल दूसरी कौमों के पैरों की उड़ी हुई धूल ही पड़ती है और कुछ भी नहीं। उनके पैर धीरे धीरे निकम्मे हो जाते हैं। काहिल हो जाते हैं, सुस्त हो जाते हैं। तटस्थठता के भ्रम ने भारत को बहुत धक्का पहुंचाया है। स्पष्ट निर्णय लेने जरूरी हैं। अगर एक सड़क पर एक स्त्री की इज्जत लूटी जा रही हो और मैं कहूं कि मैं तटस्थ हूं, एक आदमी एक कमजोर आदमी को लूट रहा हो और मै कहूं, मैं तटस्थ हूं, मैं निरपेक्ष हूं तो मेरी तटस्थता का क्या मतलब होगा? तटस्थता झूठी है और जब एक आदमी लूटा जा रहा है और मैं कहता हूं, मै तटस्थ हूं तो मैं टने वाले का साथ दे रहा हूं। जीवन में विकल्प होते हैं, तटस्थता नहीं होती है। जीवन में स्पष्ट निर्णय लेने होते हैं। सारा जगत एक बहुत बड़े संकट (Crisis) से गुजर रहा है, उसमें भारत कहता है, हम तटस्थ हैं, इतने बड़े संकट में, जिसके ऊपर निर्भर होगा सारे जगत् का, सारे मानव का भविष्य। जिसके ऊपर निर्भर होगा कि मनुष्य बचेगा या नहीं बचेगा, उसमें भारत अगर सोचता हो कि हम तटस्थ खड़े रहेंगे तो गलती में है वह। तटस्थता का कोई अर्थ नहीं होता। इधर बीस वर्षों में हम कोई गति नहीं कर सके। जीवन में और उसका कुल कारण है हमारे पास कोई सुस्पष्ट जीवन दर्शन (Philosophy) नहीं है। हम तटस्थ हैं। तटस्थ की कोई फिलोस्फी नहीं होती, कोई जीवन दर्शन नहीं होता। उसकी कोई प्रतिबद्धता नहीं होती। जीवन में भागीदारी और साझीदारी होने का उसका भाव नहीं रहता और वह कहता है कि हम तो किनारे खड़े रहेंगे। वह केवल देखने वाला रह जाता है एक दर्शक मात्र। और जीवन उनका है जो भोगते हैं। वसुन्धरा उनकी है जो भोगना जानते हैं। जो दर्शक की भांति खड़े रह जाते हैं जीवन उनके द्वार नहीं आता, और न जीवन की विजय उन्हें उपलब्ध होती है।

मैं दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि भारत को एक सुस्पष्ट दर्शन की, एक सुस्पष्ट विचार की, एक सुस्पष्ट पथ की अत्यन्त आवश्यकता है। उसी विचार के इर्दगिर्द भारत की आत्मा इकट्ठी होगी। अन्यथा, भारत बिखर जाएगा और बिखराव ऐसा होगा, बेवकूफी से भरा हुआ (Absurd) जिसका कोई हिसाब नहीं। जब पूरे मुल्क के पास कोई जीवन दिशा नहीं होती, कोई केन्द्रीय आत्मा नहीं होती तो उसका परिणाम यह होता है कि एक एक प्रान्त, एक एक जाति, एक एक जिले की अपनी आत्मा पैदा हो जाती है तब हिन्दी बोलने वाले की आत्मा अलग, गुजराती बोलने वालेकी आत्मा अलग, अंग्रेजी बोलने

वाले की आत्मा अलग हो जाती है। तब मैसूर अलग, महाराष्ट्र अलग। कौम तब टूटती है टुकड़ों में, जब कौम को इकट्ठा (Integrate) करने के लिए कोई जीवन दृष्टि नहीं होती। हम चिल्लाते हैं रोज कि मुल्क इकट्ठा होना चाहिए लेकिन मुल्क इकट्ठा कोई आसमान से होता है? मुल्क इकट्ठा होता है जब मुल्क के सामने भविष्य के लिए कोई सपना होता है जिसे पूरा करना होता है। हमारे मुल्क के पास कोई सपना नहीं है, हमारी कोई प्रतिबद्धता, कोई कमिटमेन्ट नहीं है। हम चुपचाप राहगीरों की तरह तमाशा देख रहे हैं। दुनिया जी रही है, हम तमाशगीर हैं। तटस्थता का अर्थ तमाशगीर ही हो सकता है। और तब क्षुद्र और छोटे मसले मनुष्य के मन को पकड़ लेते हैं जब कोई बड़ा मसला नहीं होता है। हिन्दुस्तान के नेताओं ने पिछले बीस वर्षों में हिन्दुस्तान को कोई बड़ा मसला (Issue) कोई बड़ी समस्या, (Problem) नहीं दी है। उल्टी हालत हो गई है यहां। दुनिया का इतिहास यह कहता है कि नेता वह है जो कौमों को कोई बड़ा मसला कोई बड़ी समस्यायें दे देते हैं। यहां हालत उल्टी है। यहां जनता समस्या देती है। नेता उनको हल करने में लगे हैं। और जब नीचे का सामान्य जन समस्याएं देने लगता है और ऊपर के नेता केवल उन समस्याओं को सुलझाकर काम चलाने की व्यवस्था करने लगते हैं तो मुल्क बिखर ही जाएगा। बड़ा नेतृत्व उन लोगों से उपलब्ध होता है जो मुल्क को किसी जीवन्त समस्या (Living Problem) के इर्दगिर्द इकट्ठा कर देते हैं। लेकिन हमारे पास मसला क्या है, पता है आपको? दुनियां हंसती होगी। गो-हत्या हमारी समस्या है। आदमी मर रहा है। आदमी के बचने तक की सम्भावना नहीं है। बहुत डर है कि पूरी मनुष्यता भी नष्ट हो जाय और हमारी समस्या क्या है। गो-हत्या होनी चाहिए कि नहीं होनी चाहिए, कि भाषा कौन सी बोली जानी चाहिए।

मैं एक घर में ठहरा था। उस घर में आग लग गई। घर के लोग चिल्लाने लगे। आग लग गई थी तो चिल्लाये और पड़ौस के लोगों को जगाया। तो मैंने उनसे कहा कि पहले यह तो तय कर लो कि किस भाषा में चिल्लाओगे। हिन्दी में कि अंग्रेजी में। क्योंकि अब तक एक राष्ट्र भाषा निश्चित नहीं हुई है। किस भाषा में चिल्लाओगे। जब तक यह ही तय नहीं तब तक चुपचाप बैठो। मकान जलने दो। टुच्चे दो कौड़ी के मसले हम देश के सामने उठाकर पूरे मुल्क के प्राणों को बिखेर रहे हैं। मुल्क के सामने कोई जीवन्त समस्या, कोई बड़ा मसला नहीं है। पता होना चाहिए आपको कि जगत में केवल वे ही

कौमें और वे ही राज्य और वे ही मुल्क कुछ कर पाते हैं जिनके पास कोई जीवन्त मसला होता है, कोई बड़ी समस्या होती है। बड़ी समस्याओं के पास बड़ी आत्माएं पैदा होती हैं। बीस साल से हम चिल्ला रहे हैं। बीस साल पहले जब आजादी नहीं मिली थी तब हमारे मुल्क ने कितने बड़े लोग पैदा किये। वे लोग किसी बड़े मसले के इर्दगिर्द पैदा हुए थे। बीस साल से आपमें कोई बड़ा मसला पैदा नहीं हुआ। बड़े लोग कैसे पैदा हो सकते हैं। आजादी की बड़ी समस्या थी, बड़ा प्रश्न था, जीवन मरण का प्रश्न था। उसके आसपास बड़ी आत्माएं जगी और पैदा हुई। जीवन तो चुनौतियों (challenge) से पैदा होता है। बीस साल से कौन सा चैलेंज है आपके सामने ? यही कि मैसूर का एक जिला महाराष्ट्र में रहे कि मैसूर में। बेवकूफिओं की भी सीमाएं होती हैं लेकिन हम उनको भी पार कर गये हैं। गो-हत्या हो कि न हो और धर्मगुरु और राजनेता और समझदार इन मसलों पर बैठ कर विचार विमर्श करते हैं इनको हल करने का। ऐसे लोगों के दिमाग के ईलाज की व्यवस्था की जानी चाहिए। ये लोग सारे मुल्क को बर्बादी के रास्ते पर ले जाते हैं। मुल्क की चेतना को गलत मार्गो पर प्रवाहित करते हैं।

एक रात मैंने एक सपना देखा। मैंने एक सपना देखा कि कुछ गौवें कनवेन्ट स्कूल से पढ़कर वापस लौट रही हैं और एक ऊंट के मकान के सामने ठहर गई हैं। वह ऊंट एक बड़ा चित्रकार है और उस ऊँट ने यह खबर घोषित करदी है कि पिकासो और पश्चिम के सब माडर्न पेन्टर्स मेरे ही शिष्य हैं। मैं जगत्गुरु हूं उन सबका। उसने घोड़े का एक चित्र बनाया है। कनवेन्ट से लौटती हुई गौवों ने सोचा, जरा हम देख लें कि इसने कौनसे घोड़े का चित्र बनाया है। वे भीतर गई। चित्र था। ऊंट खड़ा मुस्करा रहा था। उसने कहा देखो। फिर गांवों ने कहा इसका कुछ ओर छोर समझ में नहीं आता है। यह कैसा घोड़ा है। उसने कहा यह माडर्न पेंटिंग है। जिसका ओर छोर समझ में आजाय, समझना वह चित्रकला ऊंची नहीं है। जिसका कोई ओर छोर नहीं होता है इसको कुछ थोड़े से (chosen few) चुने हुए लोग समझ सकते हैं। यह घोड़े का चित्र है। गोवों ने कहा, किसी तरह हम मान भी लें कि यह घोड़े का चित्र है। लेकिन इसके कूबड़ क्यों निकले हुए हैं। उस ऊंट ने कहा, तुम्हें पता है। बिना कूबड़ के कोई कभी सुन्दर होता ही नहीं। क्योंकि परमात्मा ने सुन्दरतम प्राणी सर्वश्रेष्ठ प्राणी तो ऊंट ही बनाया है और ८४ लाख योनियों में भटकते जब आत्मा ऊंट की योनि में आती है तभी मोक्ष मिलने का

दरवाजा खुलता है और तुम्हें पता है उस ऊंट ने कहा कि मैंने ऊंटों की बाइबिल पढ़ी है। उसमें लिखा है कि ईश्वर ने ऊंट को अपनी ही शकल में बनाया है (God created camel in his own image) गौवें खूब हंसने लगीं। उन्होंने कहा ऊंट अंकल। चाचा, वे तुम ठीक समझे नहीं बाइबिल को। ठीक बाइबिल में लिखा है कि गाय को ईश्वर ने अपनी शकल में बनाया है। (God created cow in his own image) और तुम गलत समझते हो तो धर्म गुरुओं से पूछ लो। वह भी कहते हैं कि गो माता है। आजतक ऊंट को किसने पिता कहा है ? आदमी भी मानते हैं गौ माता है और आदमी मरते हैं कि गो माता है या नहीं, इन प्रश्नों पर। तो मेरी घबराहट में नींद खुल गई। मैं तो अब तक नहीं सोच पाता कि गौवें भी हंसती हैं इन बातों पर कि आदमी यह विचार करते हैं कि गौ माता है या नहीं। वैसे गौवें भी पसन्द नहीं करेंगी इस बात को कहा जाना कि गो माता हैं। गौवें सब कनवेन्ट में पढ़ती हैं तो पसन्द करेंगी कि गो मम्मी है, माता तो पसन्द नहीं करेंगी। लेकिन ये हमारे मसले हैं। अगर जानवरों को पता होगा हमारे मसलों का तो बहुत हंसते होंगे अपनी बैठक में बैठकर कि आदमी भी खूब है, गजब का है। हम तो आदमी के बाबत कभी विचार नहीं करते कि आदमी हमारा बेटा है या नहीं। लेकिन आदमियों के धर्मगुरू अनसन करते हैं, उपवास करते हैं और सारे मुल्क की चेतना को व्यथित करते हैं और भटकाते हैं। असल मसले से हटाने का एक ही रास्ता है कि नकली मसले पैदा कर दिये जांय। जीवन की असली समस्याओं से मनुष्य के मन को हटा लेने की पुरानी तरकीब है। झुठी समस्याएं (Pseudo Problem) खड़ी कर दी जांय। बीस साल में हम मिथ्या मसले खड़े करने में बड़े निष्णात हो गये हैं। मुल्क का भविष्य नहीं हो सकता है ऐसे अगर हम इसी तरह के टुच्चे और व्यर्थ के प्रश्न सामने खड़े करते चले गये। जीवन के लिए चाहिए बड़े जीवन्त और विराट। और स्मरण रहे हम जितनी बड़ी समस्या चुनते हैं, जितनी बड़ी चुनौती, उतनी ही हमारे भीतर सोई हुई आत्मा जागृत होती है और विकसित होती है। जो प्रश्न मनुष्य के भीतर उसकी चेतना को चुनौती नहीं देते उन प्रश्नों को बिदा कर देना चाहिए। निर्णय कर लेना चाहिए कि हम अपने से बड़ा प्रश्न चुनेंगे ताकि मुल्क की चेतना रोज रोज अतिक्रमण करे। विकसित हो आगे जाय।

हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि अगर किसी कौम के सामने बड़े प्रश्न न हों तो बड़े प्रश्न पैदा करने की फिक्र करनी चाहिए। क्योंकि जितने बड़े प्रश्न खड़े होते हैं आदमी उनके उत्तर देने के लिए उतनी ही आतुरता से

अपनी सोयी हुई शक्तियों को जगाना शुरू कर देता है। लेकिन हम उल्टा कर रहे हैं। हम छोटे से छोटे टुच्चे से टुच्चे प्रश्न खड़े करते हैं और उनके साथ अगर मुल्क की आत्मा नीची होती चली जाती है तो जिम्मेदार कौन है, उत्तरदायी कौन है? दूसरे मैं आपसे यह बात कहना चाहता हूं कि मुल्क के सामने बड़े प्रश्न खड़े करने हैं और सबसे बड़ा प्रश्न क्या है। सबसे बड़ा प्रश्न शायद आपको ख्याल में भी न हो। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या मुल्क को समाजवाद की दिशा में जाना है? और मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि समाजवाद (socialism) या साम्यवाद (Communism) का इतना प्रचार किया गया है कि अब कोई आदमी सोचता ही नहीं कि यह भी कोई प्रश्न है। अब तो हम सभी मानते ही हैं कि जाना ही है उसी दिशा में। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि समाजवाद की मिथ, साम्यवाद की परिकल्पना से ज्यादा घातक और खतरनाक कोई कल्पना नहीं हो सकती है। एकदम झूठी कल्पना है जिसके अन्तर्गत मनुष्य की सारी आत्मा बिक जाएगी और जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुन्दर है और जो भी सत्य है वह नष्ट हो जाएगा। पहली बात, कोई दो आदमी समान नहीं हैं और न हो सकते हैं। समानता (Equality) एकदम झूठी कल्पना (Fictions) है। कोई दो आदमी समान नहीं हैं, न कभी समान रहे हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि एक आदमी नीचा और एक आदमी ऊंचा है। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक आदमी भिन्न, अद्वितीय और अपने जैसा (Unique) है। एक एक आदमी बेजोड है। कोई आदमी किसी से न छोटा है न बड़ा। लेकिन कोई आदमी किसी के समान भी नहीं है। और दुर्भाग्य होगा वह दिन, जिस दिन हम आदमियों को जबर्दस्ती समानता की मशीन में ढालकर खड़ा कर देंगे। उस दिन मशीनें रह जाएगी, मनुष्य नहीं। लेकिन सारी दुनिया में यह कोशिश की जा रही है कि मनुष्य को सब भांति समान कर दिया जाय। मनुष्य की चेतना और जीवन का विकास व्यक्ति (Individual) की तरफ है। जीवन का लक्ष्य, व्यक्ति है। अगर हम किसी पौदे के बीज लायें और पचास बीज रख दें यहां सामने तो बीज समान होंगे बिल्कुल। बीजों में कोई फर्क नहीं होगा लेकिन उन पचास बीजों को बगिया में बो दें आप तो उनसे पचास तरह के पौधे पैदा होंगे। वे पौधे सब भिन्न होंगे। उनमें फूल लगेंगे। वे फूल सब भिन्न होंगे। बीज समान हो सकते हैं लेकिन विकास की अन्तिम स्थिति समान नहीं हो सकती। कम्युनिज्म मनुष्य की आदिम अवस्था (Primitive state of society) थी। मनुष्य जब बिल्कुल बीज रूप में था, जब उनमें कोई

विकास नहीं था तब यह स्थिति थी। तब वे समान थे। लेकिन जितना मनुष्य में विकास होगा उतना एक एक व्यक्ति अलग, पृथक, भिन्न और अद्वितीय होता चला जाएगा। जीवन की धारा अद्वितीय व्यक्तियों को पैदा करने की ओर है। एक सा समाज (monotonous society) पैदा करने की ओर नहीं है लेकिन सारी दुनिया में इधर सौ वर्षों में इतने जोर से साम्यवाद की बात की गई है कि अब तो कोई कहने का साहस भी नहीं कर सकता कि यह बात कहीं गलत भी हो सकती है। आज रूस में यदि बुद्ध पैदा होना चाहें तो नहीं पैदा हो सकते। महावीर जन्मने के साथ ही मुश्किल में पड़ जायेंगे। और महावीर बुद्ध को छोड़ दें, अगर खुद मार्क्स भी पैदा होना चाहें तो रूस उसकी पैदाइस की जमीन नहीं हो सकती। मार्क्स को भी छोड़ दें। अब तो अगर स्टेलिन भी वापस पुनर्जन्म लेना चाहें रूस में तो रूस में उनको जन्म नहीं दिया जा सकता है। क्योंकि रूस या साम्यवाद की सारी धारणा व्यक्ति विरोधी है व्यक्ति वैशिष्ट्य (Individuality) की विरोधी है। हम इकाइयां चाहते हैं, व्यक्ति नहीं चाहते और सभी व्यक्तियों को एक सा कर देना है सब भांति। निश्चित ही सभी व्यक्तियों को समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए लेकिन समान अवसर इसलिए नहीं कि सभी व्यक्ति समान हो जाय, बल्कि इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति असमान और भिन्न होने की समान सुविधा उपलब्ध कर सकें। हिन्दुस्तान पर भी यह दुर्भाग्य उतर रहा है धीरे धीरे। कौन लायेगा इस दुर्भाग्य को यह बात अलग है। कम्युनिस्ट लायेगें कि कांग्रेस लायेगी कि सोशिलिस्ट लायेंगे। लेकिन यह दुर्भाग्य धीरे धीरे उतर रहा है और हम भी इस कोशिश में लगे हैं कि एक यांत्रिक, एक समष्टिवादी (collective) समाज को निर्मित करलें। लेकिन आपको पता होना चाहिए रोटी के मूल्य पर हम आत्मा को बेचने की कोशिश कर रहे हैं। याद होना चाहिए कि समानता की यह जबर्दस्त कोशिश मनुष्य के जीवन से स्वतंत्रता को नष्ट करती है। वैचारिक स्वतंत्रता को नष्ट करती है। व्यक्तियों की विशिष्टता को नष्ट करती है। उनके बेजोड़ (Unique) होने को नष्ट करती है। जब वे किसी बड़े कारखाने के कल पुर्जे रह जाते हैं। स्वतंत्र चेतनाएं नहीं। सारी दुनियां में यह हो रहा है। हिन्दुस्तान में भी होगा। हम पीछे शायद ही रहेंगे। ऐसी कौन सी बीमारी है जिसमें हम पीछे रह जांय। हम तो सबके साथ आगे होने के लिए अत्यन्त उत्सुक और आतुर हो उठे। अगर भारत के भविष्य के लिए कोई कल्पना और कोई सपना हो सकता है तो वह यह कि भारत आने वाली दुनिया में व्यक्तिवाद का परम पोषक स्पष्ट रूप से अपने को घोषित

करेगा। व्यक्तियों के विकास का अर्थ यह नहीं हो सकता कि समाज दरिद्र होगा और लोग दीन हीन होंगें। व्यक्तियों की पूर्ण विकास की अवस्था में कोई दीन हीन होने की जरूरत नहीं रह जाती लेकिन असमानता, भिन्नता, वैशिष्ठ्य की स्वीकृति होती है। एक ऐसा समाज चाहिए जहां प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होने की स्वतंत्रता हो। समाजवाद या साम्यवाद में यह-स्वतंत्रता सम्भव नहीं है। वहां समाज होगा, व्यक्ति नहीं होंगे। व्यक्तियों की लेबलिंग की जाएगी और रह जाएगी एक कलेक्टिव भीड़ और इसके लिए सब तरह की कोशिश की जा रही है मनुष्यों की चेतनाओं को पोछ डालने की, उनके स्वतंत्र चिंतन को मिटा डालने की जो हुकूमत कहे वही दोहराने के लिए उनको मशीन बनाने की। चीन में बड़े जोर का प्रयोग चल रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति में जो विशिष्ठ चेतना है उसे पोछकर कैसे अलग कर दिया जाय और पावलेव और कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिकों ने कोई यंत्र उनके हाथ में दे दिया है कि एक एक आदमी के भीतर व्यक्तित्व है जो विशिष्ठता है जो चिंतन है उसे पोछ डाला जाय और एक एक आदमी एक कुशल मशीन हो जाय। निश्चित ही तब ज्यादा रोटी मिल सकेगी, ज्यादा अच्छे मकान मिल सकेंगे। ज्यादा अच्छा कपड़े मिल सकेंगे। लेकिन किस कीमत पर ? आत्मा को खोकर। एक मकान में आग लगी थी और मकान का मालिक बाहर आंसु बहा रहा था और खड़ा था। पड़ौस के लोग मकान से सामान निकाल रहे थे दौड़कर। सारा सामान निकाल लिया गया और मकान में अंतिम लपटें पकड़ने लगी तब लोगों ने आकर उस मकान मालिक को कहा कि कुछ और भीतर रह गया हो तो हम देखलें जाकर, क्योंकि इसके बाद दोबारा भीतर जाना सम्भव नहीं होगा। मकान अंतिम लपटों में जा रहा है। उस मकान मालिक ने कहा मुझे कुछ भी याद नहीं पड़ता। मेरी स्मृति ही खो गई है। फिर तुम भीतर जाकर देख लो, कुछ बचा हो तो आओ। उन्होंने सब तिजोरियां बाहर निकाल ली थी, मकान के सब खाते बहीं बाहर निकाल लिये थे, कपड़े बर्तन सब बाहर निकाल लिये थे। तभी एक आदमी भागा हुआ भीतर गया और वहां से छाती पीटता और रोता हुआ वापस आया। मकान मालिक का इकलौता लड़का भीतर ही जल गया था। वह बाहर आकर रोने लगा और उन्होंने कहा, हम सामान को बचाने में लग गये और सामान का अकेला मालिक नष्ट हो गया। क्या हम भी सामान को बचायेंगे या सामान के मालिक को बचायेंगे। क्या हम आदमी को बचायेंगे या रोजी, रोटी और कपड़े को। जरूरी भी नहीं है कि आदमी को बचाने में रोजी और रोटी न बचायी जा सके। आदमी के साथ उसे भी बचाया

जा सकता है। व्यक्ति को बिना मिटाये समान को भी बचाया जा सकता है। भारत के लिए कोई जीवन दर्शन अगर हो सकता है तो वह यह हो सकता है कि भारत आने वाले जगत में व्यक्तियों की गरिमा को बचाने की घोषणा करे और व्यक्ति कैसे बचाया जा सके, उनकी स्वतंत्रता, उनके प्राणों की ऊर्जा, उनकी गरिमा और गौरव कैसे बचाया जा सके, उन सबको मशीनों में बदलने से कैसे बचाया जा सके। इसके लिए भारत दुनिया में कमिटमेन्ट ले, इसके लिए प्रतिबद्ध हो सारे जगत में। उसकी अपनी एक चुनौती अपना एक आवाहन हो और इस आवाहन के इर्दगिर्द न केवल सारे देश के प्राण जग सकते हैं, बल्कि सारे जगत में एक मार्गदर्शन उपलब्ध हो सकता है।

यह तीसरी बात में कहना चाहता हूं और चौथी एक अंतिम बात और फिर मैं अपनी बात पूरा करूंगा। चौथी बात मुझे यह कहनी है कि भारत को अपने आने वाले भविष्य के निर्माण में अपने भविष्य के भाग्य और नियति के निर्माण में, अपनी पिछली भूलों को ठीक से समझ लेना होगा ताकि फिर से न दोहराई जाय। भारत ने कुछ बुनियादी भूलें तीन हजार वर्षों में दोहराई है और भारत के विचारशील लोग इतने कमजोर, इतने सुस्त और शक्तिहीन हैं कि उन भूलों के बाबत चिंतन करने की सामर्थ्य और साहस भी नहीं जुटा पाते। भारत ने एक बड़ी भूल दोहराई है और वह यह कि भारत ने आत्मा परमात्मा की एकांगी बातें की है। शरीर को और पदार्थ को बिल्कुल छोड़ दिया है और भूल गया है। एक हजार वर्ष की गुलामी इसका परिणाम थी। आदमी आत्मा भी है और शरीर भी। और जीवन चेतना भी है और पदार्थ भी है। हिन्दुस्तान ने केवल चेतना और आत्मा की बातों में अपने को भुलाये रखा और दरिद्र होता गया। शरीर क्षीण होता गया, शक्ति नष्ट होती गई। गुलाम हुए हम और गुलाम जब हम हो गये तो हम बड़े होशियार लोग हैं। तर्क खोजने में दुनिया में हमारी कोई सानी नहीं, हमारा कोई मुकाबला नहीं। जब हम गुलाम हो गये तो हमने कहा कि मुसलमानों ने आकर हमको गुलाम कर दिया। जब अंग्रेजों ने हमको पराजित कर दिया और हमारे ऊपर हावी हो गये तो हमने कहा कि अंग्रेजों ने हमें गुलाम करके कमजोर कर दिया। सच्चाई उल्टी है। जबतक कोई कौम कमजोर नहीं होती तबतक किसी को कोई गुलाम कैसे बना सकता है। गुलामी से कभी कोई कमजोर नहीं होता। कमजोर होने से जरूर कौमें गुलाम हो जाती हैं। अंग्रेजों की वजह से, मुसलमानों की वजह से आप कमजोर नहीं हुए हैं। आप कमजोर थे। आप कमजोर हो गये थे और इसलिए कोई भी आये आपको गुलाम

बनाया जा सकता है। लेकिन हम बड़े बेशर्म लोग हैं। जिन्होंने हमें गुलाम बनाया उन्हीं के ऊपर थोप देते हैं कि उन्होंने हमें कमजोर कर दिया। कमजोर हुए बिना कभी कोई गुलाम होता है। कमजोर हम क्यों हो गये ? कमजोर किया हमारे एकांगी धर्मों ने, कमजोर किया हमारे साधु महात्माओं ने, कमजोर किया हमारे अधूरे सन्यासियों ने। न हीं मुसलमानों ने, न ही अंग्रेजों ने, न ही हूणों ने, न मुगलों ने और न तुर्कों ने, किसी ने हमको कमजोर नहीं किया। कमजोरी आयी हमारे भीतर से, अधूरेपन से। हमने जीवन में पदार्थ की महत्ता को अंगीकार नहीं किया। शरीर के हम दुश्मन रहे। सम्पत्ति के, शक्ति के हम विरोधी रहे। जो कौम सम्पत्ति, शक्ति और पदार्थ की विरोधी है फिर वह राम भजन करने योग्य रह जायेगी। कहीं और किसी के योग्य नहीं। फिर वह हरिकिर्तन कर सकती है। अखण्ड कीर्तन। लेकिन और कुछ भी उससे नहीं हो सकता है। और मैं आपको स्मरण दिला दूं कि जिनके पास शक्ति नहीं उनके पास परमात्मा तक पहुंचने के मार्ग भी बन्द हो जाते हैं। थोथी बकवास कर सकते हैं वह, क्योंकि परमात्मा की उस यात्रा में भी बड़े बलशाली प्राण चाहिए। कमजोर, नपुंसक, ढीले और सुस्त लोगों के लिए मार्ग नहीं हैं। हिमालय की चोटियां जो नहीं चढ़ सकते वे परमात्मा की चोटियों को क्या चढ़ सकेंगे। लेकिन हिन्दुस्तान की हिमालय की चोटियां चढ़ने के लिए बाहर से लोग आते हैं। एवरेस्ट को चढ़ने के लिए बाहर से लोग आते हैं। और हमारे बच्चे अन्धेरे में जाने से डरते हैं। हम आत्मा की अमरता की बाते करते हैं और हमसे ज्यादा मौत से डरने वाला जमीन पर कोई भी नहीं। बड़ी अजीब बात है। यह धर्म अधूरा था। अगर भारत को कोई भविष्य बनाना है तो उसे पूरे धर्मो को विकसित करना होगा। पूरे धर्म से मेरा मतलब है जो शरीर को भी स्वीकार करता है और आत्मा को भी। एक दूसरी भूल पश्चिम ने की है। उन्होने आत्मा को अस्वीकार करके केवल शरीर को मान लिया है। एक अति की भूल उन्होंने की। एक अति की भूल हमने की। जीवन संगीत ऐसे पैदा नहीं होता।

एक छोटी सी कहानी कहकर मैं अपनी बात पूरी करूंगा।

बुद्ध के पास एक युवा राजकुमार ने दीक्षा ली। वह अत्यन्त भोगी और विलासप्रिय था। बुद्ध के पास दीक्षा लेकर जब वह सन्यासी हुआ तो बुद्ध के दूसरे भिक्षुओं ने कहा कि यह इतना विलासी राजकुमार जो कभी महलों से बाहर नहीं निकला, जिसने कभी खुले आसमान की धूप नहीं सही, जो चलता था रास्तों पर तो फूल और मखमल बिछाये जाते थे। सुनते हैं वह मकान की सीढ़ियों

पर सहारा लेकर चढ़ने के लिए नग्न स्त्रियों को खड़ा करने लगा था। यह आदमी दीक्षित हो रहा है, यह सन्यासी हो रहा है। बुद्ध ने कहा मनुष्य का मन हमेशा अति में डोलता है। जो भोगी है वह योगी हो जाता है। जो योगी है वह भोगी हो जाता है। अभी पश्चिम में बहुत जोरों से धर्म का प्रभाव बढ़ रहा है। चर्च में लोग जा रहे हैं। एक्स्ट्रीम, उनका दिमाग भोग से ऊब गया है पेंडुलम उनकी घड़ी का धर्म की तरफ जा रहा है। हिन्दुस्तान के लोग धर्म से ऊब गये। उनका पेंडुलम भोग की तरफ सिनेमा की तरफ जा रहा है। वहां उनकी भीड़ चर्च के सामने इकट्ठी हो रही है। यहां की भीड़ सिनेमा के पास इकट्ठी हो रही है। मनुष्य का जो मन है बीमार मन, वह हमेशा अति पर जाता है। ज्यादा खाने वाले लोग उपवास करने लग जाते हैं। जिनके चित्त में स्त्रियों के चित्र बहुत चलते हैं वे ब्रह्मचारी हो जाते हैं। जीवन अति में चलता है और अति भूल है, एक्स्ट्रीम भूल है। बुद्ध ने कहा वह अति पर जा रहा है, लेकिन देखो और भिक्षुओं ने देखा कि वही हुआ। वह जिस दिन से राजकुमार श्रोण दीक्षित हुआ, दूसरे भिक्षु राजपथ पर चलते थे लेकिन यह कांटों वाली पगडंडी पर चलता था ताकि पैरों में कांटे छिद जांय और लहुलुहान हो जायं। वह त्यागी तपस्वी ठीक रास्ते पर कैसे चल सकता था। कल तक वह मखमलों पर चलता था और अब वह कांटों पर चलता है। बीच का कोई रास्ता था ही नहीं। दूसरे भिक्षु एकबार भोजन करते वह एक दिन भोजन करता और एकदिन निराहार रहता। दूसरे भिक्षु वृक्षों की छाया में बैठते। वह भरी दोपहरी धूप में खड़ा रहता था। दूसरे भिक्षु वस्त्र ओढ़ते, सर्दी आती। लेकिन वह सर्दी में भी नग्न पड़ा रहता था। उसने सारे शरीर को एकवर्ष में सुखाकर कांटा बना लिया। वह सुन्दर राजकुमार, उसकी सुन्दर काया सूखकर काली पड़ गई, कुरूप हो गई। उसके पैरों में छाले पड़ गये। उसके पैरों में लहू बहता रहता। मवाद पड़ गई। फोड़े पड़ गये। बुद्ध एक वर्ष बाद उस राजकुमार के पास गये और कहा राजकुमार श्रोण मैंने सुना है कि जब तू भिक्षु नहीं हुआ था तो सितार बजाने में, वीणा बजाने में तेरी बड़ी कुशलता थी। क्या यह सच है? उस श्रोण ने कहा हां, यह सच है। लोग कहते थे तेरे जैसा वीणा बजाने वाला कोई कुशल वादक नहीं है। तो बुद्ध ने कहा, मैं एक प्रश्न में उलझ गया उसे पूछने आया हूं तुझसे। वीणा के तार अगर बहुत ढीले हों तो संगीत पैदा होगा? श्रोण ने कहा कि कसे तार ढीले हो गये तो टंकार भी पैदा नहीं हो सकती तो संगीत कैसे पैदा होगा। बुद्ध ने कहा और अगर तार बहुत

कसे हों तो संगीत पैदा होता है ? उस श्रोण ने कहा नहीं। अगर तार बहुत कसे हों तो वे टूट जाते हैं फिर भी संगीत पैदा नहीं होता। तो बुद्ध ने कहा संगीत पैदा कब होता है ? संगीत के पैदा होने का राज और रहस्य क्या है ? उस श्रोण ने कहा वीणाके तार की एक ऐसी दशा भी है जब न तो हम कह सकते हैं कि वह ढीली है और न कह सकते हैं कि वे कसे हुए हैं। उस मध्य में, उस संतुलन में, उस समता में, उस बिन्दु पर संगीत का जन्म होता है। तो बुद्ध ने कहा मैं जाता हूं। इतना ही कहने आया था कि जो वीणा में संगीत पैदा होने का नियम है, जीवन की वीणा पर भी पैदा होने का वही नियम है। जीवन की वीणा से संगीत वहीं पैदा होता है जब न तो तार आत्मा की तरफ बहुत कसे होते हैं और न शरीर की तरफ बहुत ढीले होते हैं।

भारत ने शरीर के विरोध में आत्मा के तरफ तारों को कस लिया। हमारी वीणासे संगीत उठना हजारों साल से बन्द हो चुका है। पश्चिम में जीवन की वीणा के तार शरीर की तरफ बिल्कुल ढीले छोड़ दिये, उनपर टंकार ही नहीं पैदा होती, उससे भी संगीत उठना बन्द हो गया है। क्या हम जीवन की वीणा पर संगीत पैदा करना चाहते हैं ? तो हमें पश्चिम और पूर्व की दोनों भूलों से भारत के भविष्य को बचाना है। पूर्व के अतीत से और पश्चिम के वर्तमान से-दोनों से बचा लेना है, दोनों अतियों से बचा लेना है। अगर यह हो सके तो एक सौभाग्यशाली देश का जन्म हो सकता है। और हो सकता है यह भी कि दुनियां में भारत इतनी तीव्रता से, इतनी ऊर्जा से उठे कि जिसका कोई हिसाब न लगा सके। क्योंकि जो जमीन बहुत दिनों तक पड़ती (Fallow) रहती है, जिस जमीन पर बहुत दिनों तक किसान फसल नहीं बोता उस पर अगर बीज डाले जांय तो दूसरे किसानों की फसलों से हजार गुनी ज्यादा फसल आती है। डेढ़ दो हजार वर्षों से भारत की चेतना की भूमि पड़ती पड़ी है। उसपर कोई फसल नहीं बोई गई। यह हो सकता है कि अगर हमने कुशलता से, समझदारी से, बुद्धिमत्ता से काम लिया तो यह हो सकता है कि दो हजार वर्ष का दुर्भाग्य हमारे वरदान में फलित हो जाय और हमारे देश की चेतना और आत्मा की जो जमीन पड़ती पड़ी है उसपर हम जीवन की कोई सुन्दर फसल काट सकें। यह हो सकता है, लेकिन यह आसमान से नहीं होगा और किसी भगवान की पूजा और प्रार्थना करने से नहीं होगा, और किसी शास्त्रों और मंदिरों के सामने सिर टेकने से नहीं होगा। बहुत हो चुकीं ये सारी बातें और इनसे कुछ भी नहीं हुआ है। यह होगा अगर हम कुछ करेंगे। यह हमारे संकल्प (will) और

हमारे भीतर सोयी हुई शक्ति के जगाने से हो सकता है। भारत वही बनेगा जो हम उसे बना सकते हैं।

तो मैं निवेदन करना चाहता हूं कि आने वाले भविष्य के लिए भारत के सर्जनात्मक नये रूप, एक नये जीवन को देना है। मित्र बनें और सहयोगी बनें। एक बहुत बड़ा जिम्मा हम सबके ऊपर है। और अगर एक एक व्यक्ति ने यह जिम्मा उठा लिया तो कोई भी कारण नहीं है कि यह न हो सके। चाहे रात कितनी भी अंधेरी हो लेकिन उस अंधेरी रात के बाद सुबह का सूरज उग सकता है। देश में बड़ी अंधेरी रात है। लेकिन सुबह का सूरज भी उग सकता है। लेकिन वह सूरज अपने आप नहीं उग जाएगा। उसे हमें उगाना होगा।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कही। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं। मुझे राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन मैं तटस्थ भी नहीं हो सकता कि राजनीति कुछ भी किये चले जांय और हम निरपेक्ष और तटस्थ खड़े रहें। हमें कुछ कहना है, जानना है तो सोचना ही होगा। मुल्क के लिए चिंतन करना ही होगा, अन्यथा मुल्क भटक जाएगा और हम सब उसके लिए एक से अपराधी सिद्ध होंगे। राजनीतिज्ञ ही नहीं साधु और सन्यासी भी जो चुपचाप खड़े रहेंगे वे अपराधी सिद्ध होंगे और उनका अपराध राजनीतिज्ञों के अपराध से बड़ा होगा। उनका अपराध बहुत पुराना है। असल में मनुष्य जाति को जिन लोगों ने सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाया है वे अच्छे लोग हैं। जो राजनीति की तरफ पीठ करके खड़े हो जाते हैं और बुरे लोगों को मौका देते हैं कि वे राजनीति में प्रविष्ट हो जांय। बर्टेन्डरसल ने बहुत पहले ही वक्तव्य दिया था। वक्तव्य अद्‌भुत था। उस वक्तव्य को उसने शीर्षक दिया था "वह नुकसान जो अच्छे लोग करते हैं"। (The harm that good men do) अच्छे लोग कौन सा नुकसान करते हैं। अच्छे लोग तटस्थ हो जाते हैं। अच्छे लोग निरपेक्ष हो जाते हैं। अच्छे लोग कहते हैं हमें कोई मतलब नहीं। अच्छे लोग कहते हैं यह संसार की बातें हैं, हम सन्यासी हैं। अच्छे लोग कहते हैं यह बम्बई है। हम तो जंगल जाने वाले हैं। अच्छे लोग बुरे लोगों के लिए जगह खाली करते हैं और फिर बुरे लोग जो करते हैं उससे यह दुनिया हमारे सामने है जो पैदा होती है। मैं अच्छे आदमियों को आमंत्रण देता हूं आप बुरे आदमियों को किसी भी जगह पर खाली जगह देते हैं तो आपका अपराध है। इस अपराध से प्रत्येक को बचना है और अगर हम बच सकते हैं तो निराश होने का कोई कारण नहीं है।

हृदय की पगडंडियां :

(चर्चाओं से संकलित)

संकलन : सुश्री क्रांति

१ :

अमावस की अंधेरी रात्रि और एक फकीर मरणशय्या पर पडा है। उस झोपडी में आज मिट्टी का एक दिया भी नहीं जल रहा है।

लेकिन, उस मरते हुये व्यक्ति ने आंखें खोलीं तो कहा: "आह ! आज की रात्रि कैसी शांत है। अंधकार कैसा प्यारा है और आकाश कैसे चमकते तारों से भरा है !"

यह सुन उसकी खाट के आसपास बैठे मित्र रोने लगे हैं।

फिर किसी ने आंसुओं के बीच कहा है : "हाय ! दुर्भाग्य !"

लेकिन वह मरता हुआ व्यक्ति बोला : "नहीं ! नहीं ! ऐसा मत कहो। कहो : सौभाग्य ! सौभाग्य ! क्योंकि, मैं जीवन भर खोजकर कहता हूं कि दुर्भाग्य कहीं भी नहीं है।"

और जब उस फकीर ने यह कहा तो उसकी आंखें किसी अज्ञात ज्योति के स्रोत बन गई थीं, और उसके ओठों पर कोई अदृश्य गीत खिल उठे थे, और वह झोपडी भी किसी अपरिचित सुवास से भर गई थी।

आह ! वह व्यक्ति, और उसके हृदय की वीणा से उठा हुआ वह संगीत। लेकिन, जो सुन सकते थे, वही सुन सकते थे और जो देख सकते थे, वही देख सकते थे।

मनुष्य कितना बहरा है और कितना अंधा है ?

फ़िर एक व्यक्ति ने कहा : "मित्र ! यह विदा का क्षण है और हम

दुख में डूबे जा रहे हैं।"

वह फकीर बोला : "नहीं ! नहीं ! नहीं ! विदा का क्षण नहीं। यह तो मिलन की वेला है। क्या मैं प्रभु मिलन के द्वार पर नहीं खडा हूं ?"

उस व्यक्ति ने फिर भी नहीं सुना था। वह फिरसे बोला। "आह ! क्या आज तुम एक अजनबी और अपरिचित देश की यात्रा पर नही जा रहे हो ? मित्रों और प्रियजनों और अपने घर से दूर ?"

और ! आह ! उस मरते हुये व्यक्ति की वह हंसी। उसके ओंठों से झरते हुये वे चांदनी के फूल। वह हंसने लगा और बोला : "मैं अजनबी और अपरिचित देश से वापस लौट रहा हूं। मैं अपने घर वापस लौट रहा हूं। मैं अपने प्रियतम के पास वापस लौटा रहा हूं।"

फिर किसी और ने कहा : "यह घर बर्बाद् हुआ जा रहा है।"

लेकिन मृत्यु के द्वार पर खडे उस व्यक्ति ने कहा: "मित्रो ! तारों को देखो। अंधकार को नहीं। चांद को देखो। बादलों को नहीं। मैं अहंकार के कारागृह में बंद एक बंदी था और आज मुक्त हो रहा हूं। मैं शरीर की मित्रता में एक भिखमंगा था और आज सम्राट हो रहा हूं।"

२ :

निर्जन में खडा एक छोटा सा मंदिर। सुबह की सूर्यकिरणों की वर्षा में नहाया हुआ। और उसकी सीढियों पर बैठा हुआ एक प्रेमी। उस प्रेमी की आंखें आंसुओं में डूबी हैं और उसके हाथ आकाश की ओर जुडे हुये हैं और वह बुदबुदा रहा है : "आह ! मुझे सिखाओ कि मैं प्रेम कैसे करुं ? मैं प्रेम में दीक्षा चाहता हूं। मैं प्रेम के मंदिर में प्रवेश चाहता हूं। प्रभु, मुझे मार्ग दिखाओ ! प्रभु, मुझे मार्ग दिखाओ। प्रभु, मुझे मार्ग दिखाओ।"

उसकी ऐसी आर्तवाणी से वह निर्जन गूंज उठा है।

आधी रात्रि से ही वह इस भांति रो रहा है और पुकार रहा है।

और उसे प्रतिपल उत्तर भेजा जा रहा है लेकिन वह न सुनता है, न देखता है, और पुकारता ही चला जा रहा है, और रोये ही चला जा रहा है।

वह जब अर्धरात्रि में मंदिर के द्वार पर आया था तब मंदिर में एक छोटा सा दिया जल रहा था और जब उसने कहा था : "प्रभु ! मुझे सिखाओ

कि मैं प्रेम कैसे करूं ?" तो वह दिया बुझ गया था और कहता गया था : "ऐसे ! ऐसे ! मिटो .... क्योंकि मिट कर ही प्रेम पाया जाता है।"

लेकिन, उसने नहीं सुना. . . . नहीं सुना। वह अपनी पुकार ही किये गया। वह अपनी प्रार्थना किये गया।

फिर सुबह हुई और उसके चारों ओर वृक्षों से फूल गिरने लगे और कहने लगे : "ऐसे ! प्यारे ! ऐसे ! मिटो. . . क्योंकि जो मिटता है, वह प्रेम का अधिकारी हो जाता है।"

लेकिन, उसने नहीं सुना. . . नहीं सुना। वह रोता ही रहा और कहता ही रहा : "मैं प्रेम कैसे करूं ? मैं प्रेम कैसे करूं ? मुझे सिखाओ कि मैं प्रेम कैसे करूं ? मैं प्रेम के मंदिर में प्रवेश चाहता हूं।"

मैं उस मंदिर के पास से गुजरता था तो मैंने सोचा कि चलो मैं उससे कुछ कहूं ? लेकिन बुझे दिये ने मुझे रोका, मिट्टी में मिल गये फूलों ने मुझे रोका। वे कहने लगे : "अब तुम और पागल मत बनो। हम तो पागल बन ही चुके हैं। वह सुनने को राजी ही नहीं है। शायद उसे ज्ञात ही नहीं है कि प्रार्थना बोलना नहीं, सुनना है। हम मिटकर कह चुके हैं कि मिटो. . क्योंकि स्वयं का मिट जाना ही प्रेम के मंदिर में, प्रवेश पा जाना है। लेकिन वह सुनता ही नहीं है।

शब्द में जो उलझा है, वह निशब्द संदेश से वंचित ही रह जाता है।

और प्रभु के सभी संदेश निशब्द हैं।

३ :

मंदिर के पास फूल खिल रहे थे।

हवाओं में उसकी सुगन्ध बही जाती थी।

और एक व्यक्ति मंदिर में आंखें बंद किये बैठा था और पूछ रहा था : "प्रभु तुम कहां हो ? मुझे दर्शन दो. . . . . प्रभु मुझे दर्शन दो ?"

सुबह के पक्षी गीत गा रहे थे।

उनके संगीत में सारा वनप्रांत नाच रहा था।

और वह व्यक्ति मंदिर में बहरा बना बैठा था और पूछ रहा था : "प्रभु तुम कहां हो ? मुझे दर्शन दो. . . . प्रभु, मुझे दर्शन दो ?"

उसकी पुकार सुन प्रभु उस मंदिर में आये और उसके सामने खडे हो गये, लेकिन वह व्यक्ति तो आंखें बंद किये था और कहे जा रहा था ": प्रभु तुम कहां हो ? मुझे दर्शन दो. . . . प्रभु मुझे दर्शन दो ?"

और तब उन दयावान ने उसे झकझोरा और कहा: "पागल । आंखें तो खोल । मैं तेरे सामने ही हूं । मैं तो सब कहीं हूं । फूलों में. . . पक्षियों में. . . सबमें मैं ही हूं ।"

लेकिन, उस व्यक्ति ने आंखें और जोर से बंद करलीं और कहा: "हे भगवान ! मुझे बचाओ ! कोई दुष्ट मेरी साधना में बाधा डाल रहा है ।"

मैं भी उस मंदिर के एक कौने में छिपा खिलते फूलों के साथ खिल रहा था और गीत गाते पक्षियों के साथ गीत गा रहा था । लेकिन इस घटना को देख तो हंसी रोकनी कठिन थी । और उस दिन जो हंसी शुरु हुई थी । वह आज तक भी बंद नहीं हुई है । मैं हंसे ही जा रहा हूं . . . मैं बस हंसे ही जा रहा हूं । और लोग पूछते हैं कि मैं क्यों हंसता रहता हूं ? अब आप ही बतायें कि मैं उन्हें क्या बताऊं ? और क्या बताने से वे समझ सकेंगे क्योंकि मैं उन्हीं पर तो हंस रहा हूं ।

४ :

मेरे प्यारे !
तू न निद्रा है, न स्वप्न, न जागृति ।
क्योंकि वे तीनों तेरे समक्ष हैं और इसलिये तू उनके अतीत है ।
तू न प्रकाश है, न अंधकार ।
क्योंकि तू उन दोनों को जानता है ।
और ज्ञाता तो सदा ही ज्ञात से भिन्न है ।
तू न जीवन है, न मृत्यु ।
तू तो वह है जिसपर वे दोनों ही घटित होते हैं ।
वे लहरें हैं और तू सागर है ।

५ :

मनुष्य क्या भूल गया है ?
वही. . . . . जो सभी स्वप्न देखनेवाले भूल जाते हैं ।

आह ! क्या स्वप्न में नहीं भूल जाता है कि जो मैं देख रहा हूं, वह स्वप्न है ?

६ :

एक आदमी भागा जा रहा था।

वह बहुत भयभीत था।

जैसे मृत्यु ही उसके पीछे पड़ी हो।

मैंने उसे रोका। बहुत मुश्किल से ही वह रुका।

फिर मैंने उससे उसके भय का कारण पूछा।

उसने कंपते हुये हाथ से अपने पीछे इशारा किया।

लेकिन वहां तो कोई भी नहीं था

सिवाय् उसकी स्वयं की छाया के।

वह उसी छाया से भयभीत था।

और यह सुनकर क्या आप हंस रहे हैं ?

नहीं ! नहीं ! नहीं। हंसिये मत। क्योंकि वह मनुष्य अपवाद नहीं था। भयमात्र स्वछाया का ही भय है। जब भी मनुष्य भयभीत होता है तो अपने से ही भयभीत होता है।

७ :

मित्र : तू किसे खोज रहा है ?

और क्या पहले खोजनेवाले को ही खोज लेना उचित नहीं है ?

और मैं कहता हूं कि उसे खोजते ही सारी खोज पूर्ण हो जाती है।

क्योंकि, सारी इच्छायें, आकांक्षायें और अभीप्साओं का केन्द्र वही है।

वही।

वही।

वही।

वही, जो तू है।

और सोच, तू किसे खोज रहा है ?

क्या ईश्वर मर गया है?

(एक प्रवचन)

संकलन : श्री अनूप सेठ

एक छोटी सी कहानी से मैं आज की चर्चा प्रारम्भ करना चाहूंगा।

एक सुबह की बात है, एक पहाड़ से एक व्यक्ति गीत गाता हुआ नीचे उतर रहा था। उसकी आंखों में किसी बात को खोज लेने का प्रकाश था, उसके हृदय में किसी सत्य को जान लेने की खुशी थी, उसके कदमों में उस सत्य को दूसरे लोगों तक पहुंचा देने की गति थी। वह बहुत उत्साह से और बहुत आनन्द से भरा हुआ प्रतीत हो रहा था। अकेला था पहाड़ के रास्ते पर और नीचे मैदान की तरफ उतर रहा था। बीच में उसे एक बूढ़ा आदमी मिला जो पहाड़ की तरफ ऊपर को चढ़ रहा था। उस व्यक्ति ने उस बूढ़े आदमी को पूछा कि तुम पहाड़ पर किसलिए जा रहे हो? उस बूढ़े ने कहा कि परमात्मा की खोज के लिए। और वह व्यक्ति जो पहाड़ से नीचे की तरफ उतरा आ रहा था यह सुनकर बहुत जोर से हंसने लगा और उसने कहा, क्या यह भी हो सकता है कि तुम्हें अभीतक वह दुःखद समाचार नहीं मिला? उस बूढ़े आदमी ने पूछा, कौन सा समाचार? तो उस व्यक्ति ने कहा कि क्या तुम्हें अभीतक पता नहीं कि ईश्वर मर चुका, तुम किसे खोजने जा रहे हो? क्या जमीन पर और नीचे मैदानों में अबतक यह खबर नहीं पहुंची कि ईश्वर मर चुका? मैं पहाड़ से आ रहा हूं और मैं भी ईश्वर को खोजने गया था लेकिन वहां जाकर मैंने भी ईश्वर को नहीं, ईश्वर की लाश को पाया। और क्या दुनिया तभी विश्वास करेगी जब उसे अपने हाथों से दफना देगी? क्या यह खबर अबतक नहीं पहुंची? मैं

वहीं खबर लेकर नीचे उतर रहा हूं कि मैदानों में जाऊं और लोगों को कह दूं कि पहाड़ों पर जो ईश्वर रहता था वह मर चुका है। लेकिन उस बूढ़े आदमी ने भी विश्वास नहीं किया। साधारणतया कोई मर जाय तो उसकी बात पर भी हम विश्वास नहीं करते हैं, ईश्वर के मरने पर कौन विश्वास करता है। उस बूढ़े आदमी ने समझा कि युवक पागल हो गया है। वह अपने रास्ते पर बिना कुछ कहे पहाड़ चढ़ने लगा। और उस युवक ने सोचा कि अजीब है यह आदमी, जिसे खोजने जा रहा है वह मर चुका है और फिर भी खोज को जारी रखना चाहता है, लेकिन वह नीचे की तरफ उतरता रहा। रास्ते में और एक साधु मिला जो आंखें बन्द किये हुए किसी के ध्यान में लीन था, उस युवक ने उसे झकझोरा और कहा कि किस का चिन्तन करते हो, किस का ध्यान करते हो? उसने कहा कि परमात्मा का ध्यान करता हूं। वह युवक हंसा और बोला, मालूम होता है यह खबर ले जाने का दुखद काम मुझे ही करना पड़ेगा कि तुम जिसका ध्यान कर रहे हो वह बहुत समय हुआ मर चुका। उसके ध्यान करने से कुछ भी नहीं होगा। अब उसके स्मरण करने से कुछ भी न होगा और अब उसके गीत और प्रार्थनाएं कोई भी फल नहीं लायेंगे, क्योंकि मुर्दा आदमी कुछ नहीं कर सकता, मुर्दा परमात्मा भी क्या करेगा? और वह युवक और नीचे उतरा और उसी पहाड़ पर मैं भी गया था और मेरी भी उससे मुलाकात हुई। वही मैं आपसे कहना चाहता हूं। उस आदमी ने मुझसे भी पूछा कि कहां जाते हो?। इसके पहले कि मैं उसको कोई उतर देता, मैंने भी पूछा, तुम कहां जाते हो? उसने कहा, एक खबर मेरे पास है उसे दुनिया को मुझे कहना है और उसने कहा कि ईश्वर मर गया है, तुम्हें पता चला? मैंने उस आदमी से कहा कि मेरे पास भी एक खबर है और मुझे भी वह दुनिया से कहनी है। और क्या तुम्हें पता है कि जो ईश्वर मरा है वह ईश्वर था ही नहीं, एक झूठा ईश्वर मर गया है। कुछ लोग उस झूठे ईश्वर के जिन्दा होने के ख्याल में हैं और कुछ लोग उस झूठे ईश्वर के मर जाने के ख्याल में हैं। लेकिन जो सच्चा ईश्वर था वह अब भी है और हमेशा रहेगा। मैंने उससे कहा कि तुम एक खबर दुनिया को कहना चाहते हो और मैं भी एक खबर कहना चाहता हूं कि जो मर गया है वह सच्चा ईश्वर नहीं था। क्योंकि जो मर सकता है वह जीवित ही न रहा होगा। जीवन का मृत्यु से कोई सम्बन्ध नहीं है। जहां जीवन है वहां मृत्यु नहीं है। और जहां मृत्यु हो, जानना कि जीवन भ्रामक था और झूठा था, कल्पित था, मृत्यु ही सत्य थी। वह जो मरा हुआ है वही केवल मरता है। जो जीवित है उसके मरने

की कोई सम्भावना नहीं है। जीवन के मर जाने से ज्यादा असम्भव बात और कोई नहीं हो सकती। ईश्वर तो समग्र जीवन का नाम है।

वह आदमी दुनिया के कौने कौने में अपनी खबर कहता फिरता है। मुझको भी उसका पीछा करना पड़ रहा है। जहां वह जाता है, मुझे भी वहां जाना पड़ता है। जरूर आपसे भी उसने यह बात आकर कही होगी कि ईश्वर मर गया। बहुत तरकीबें हैं उस बात के कहने की, बहुत से रास्ते हैं, बहुत सी व्यवस्थाएं हैं। बहुत ढंगों से आप तक भी यह खबर निश्चित ही पहुंच गयी होगी कि ईश्वर मर चुका है।

मैं आपसे दूसरी बात कहना चाहूंगा, इन आने वाले चार दिनों की चर्चाओं में। वह यह कि जो ईश्वर मर चुका है वह जिन्दा ही नहीं था। कुछ लोगों ने उसे एक झूठा ही जीवन दे रखा था और अच्छा ही हुआ कि वह मर गया। और अच्छा ही होता कि वह कभी पैदा ही न होता, और अच्छा हुआ होता कि वह बहुत पहले मर गया होता। तो यह खबर सुखद है, दुखद नहीं। लोगों ने आपसे बहुत रूपों में कहा होगा कि धर्म की मृत्यु हो गयी है। यह बहुत अच्छा हुआ है। क्योंकि जो धर्म मर सकता है वह मर ही जाना चाहिए। उसे जिन्दा रखने की कोई जरूरत नहीं है और जब तक झूठा धर्म जिन्दा रहेगा और झूठा ईश्वर जीवित मालूम पड़ेगा तबतक सच्चे ईश्वर को खोजना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि सच्चे ईश्वर और हमारे बीच में झूठे ईश्वर के अतिरिक्त और कोई भी नहीं खड़ा हुआ है। मनुष्य के और परमात्मा के बीच में एक झूठा परमात्मा खड़ा हुआ है, मनुष्य के और धर्म के बीच में अनेक झूठे धर्म खड़े हुए हैं। वे गिर जायें, वे जल जायें और नष्ट हो जायें तो मनुष्य की आंखें, उसकी तरफ उठ सकती हैं जो कि सत्य है और परमात्मा है।

कौन सा ईश्वर झूठा ईश्वर है? मन्दिरों में जो पूजा जाता है वह ईश्वर झूठा है, क्योंकि उसका निर्माण मनुष्य ने किया है। मनुष्य ईश्वर को बनाये, इससे ज्यादा झूठी और कोई बात नहीं हो सकती है। ईश्वर ने मनुष्य को बनाया होगा, यह तो हो भी सकता है, लेकिन यह कैसे हो सकता कि मनुष्य और ईश्वर को बना ले। लेकिन जितने प्रकार के मनुष्य हैं उतने प्रकार के ईश्वर हमने निर्मित कर लिए हैं और जितने प्रकार के मनुष्य हैं उतने ही प्रकार के मन्दिर हैं, उतने ही प्रकार की मस्जिदें हैं, उतने ही प्रकार के गिरजाघर हैं, और न मालूम क्या हैं। हम सबने मिलकर न मालूम कितने प्रकार के ईश्वर ईजाद कर लिए हैं, ये ईश्वर निश्चित ही झूठे हैं। ईश्वर ईजाद नहीं किया जा सकता है,

इनवैंट नहीं किया जा सकता है। कोई न तो उसे पत्थर के द्वारा निर्मित कर सकता है और न शब्दों के द्वारा और न रंगों के द्वारा और न रेखाओं के द्वारा। क्योंकि जो भी हम निर्मित कर सकेंगे वह हमसे भी ज्यादा कच्चा और हमसे भी ज्यादा झूठा और हमसे भी ज्यादा क्षणभंगुर होगा।

मनुष्य ईश्वर निर्मित नहीं कर सकता है लेकिन ईश्वर को उपलब्ध कर सकता है। मनुष्य ईश्वर की ईजाद नहीं कर सकता है लेकिन ईश्वर का अविष्कार कर सकता है, इनवैंट तो नहीं कर सकता, डिस्कवर कर सकता है। मनुष्य ने जितने भी ईश्वर ईजाद किये हैं सब झूठे हैं और इन्हीं ईश्वरों के कारण और इन धर्मों (Religions) के कारण। धर्म (Religion) का दुनिया में कहीं कोई पता भी नहीं मिलता। जहां भी जाएगा कोई न कोई ईश्वर बीच में आ जायेगा और कोई न कोई धर्म। और धर्म से आपका कोई भी सम्बन्ध नहीं हो सकेगा, हिन्दू बीच में आ जायगा, ईसाई, मुसलमान, जैन और बौद्ध कोई न कोई बीच में आ जायगा, कोई न कोई दीवाल खड़ी हो जायगी, कोई न कोई पत्थर बीच में अटक जायेगा और द्वार बीच में बन्द हो जायेगा और ये द्वार परमात्मा से मनुष्य को तो तोड़ते ही हैं, मनुष्य से भी मनुष्य को तोड़ देते हैं। मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाले कौन हैं? एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच कौन सी दीवाल है? पत्थर की, मकानों की? नहीं मन्दिरों की, मस्जिदों की, धर्मों की, शास्त्रों की, विचारों की दीवालें हैं जो एक एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से अलग किये हुए हैं और स्मरण रहे कि जो दीवालें मनुष्य को मनुष्य से दूर कर देती हैं वे दीवालें मनुष्य को परमात्मा से कैसे मिलने देंगी, यह असम्भव है। अगर मैं आपसे दूर हो जाता हूं तो यह कैसे सम्भव है कि जो चीज मुझे आपसे दूर कर देती हो वह मुझे उससे जोड़ दे जो कि सबका नाम है, यह सम्भव नहीं है। लेकिन इस तरह का ईश्वर, इस तरह का धर्म हजारों हजारों बरसों से मनुष्य के मन पर छाया हुआ है और यही कारण है कि पांच छ हजार बरसों से निरन्तर निरन्तर चिन्तन मनन और ध्यान के बाद जीवन में धर्म का कोई अवतरण नहीं हो सका। एक मिथ्या धर्म (False Relation) हमारे और धर्म के बीच खड़ा हुआ है। नास्तिक नहीं धर्म को रोक रहे हैं और न वैज्ञानिक रोक रहे हैं और न भौतिकवादी रोक रहे हैं। रोक रहे हैं वे लोग जिन्होंने धर्मों की ईजाद कर ली है और तब हम उन किसी न किसी ईजाद किये हुए धर्म की दीवाल में आबद्ध हो जाते हैं, कारागार में बन्द हो जाते हैं और हमारे चित्त परतन्त्र हो जाते हैं और उस स्वतन्त्रता को खो देते हैं जो

कि सत्य की खोज की पहली शर्त है। ऐसा ईश्वर मर गया है, मर जाना चाहिए। न मरा हो तो जिन लोगों को भी ईश्वर से प्रेम है उन्हें सहायता करनी चाहिए कि वह मर जाये। उसे दफना दिया जाना चाहिए। अगर समय रहते यह न हो सका तो सच्चे धर्म के अभाव में मनुष्य जाति का क्या होगा, यह कहना बहुत कठिन है और बहुत दुर्भाग्यपूर्ण भी है, वह घोषणा करनी, और उस दिन की कल्पना भी मन को कंपा देने वाली है।

आज भी मनुष्य को क्या हो गया है, आज भी मनुष्य क्या है। अगर पशु पक्षियों में होश होगा तो वे आदमी को देखकर जरूर हंसते होंगे, उन्हें हंसी आती होगी। डार्विन ने कुछ वर्षों पहले लोगो को समझाया कि मनुष्य जो है वह बन्दर का विकास है। लेकिन एक बन्दर ने मुझे बताया है कि मनुष्य जो है वह बन्दर का पतन है। डार्विन समझ नहीं पाया। बन्दर हंसते हैं आदमी पर और सोचते हैं कि यह उनका पतन है। यह कुछ बन्दर भटक गये हैं और आदमी हो गये हैं और डार्विन को ख्याल था कि यह बन्दरों का विकास है, यह केवल आदमी के अहंकार की भूल है, एक बन्दर ने मुझे बताया। यह जो आदमी की आज स्थिति है यह कल और क्या होगी और कौन इस स्थिति को ऐसा बनाये हुए है। स्मरण रखिये बीमारियों से ज्यादा घातक वे दवाइयां हो जाती हैं जो कि झूठी हैं। स्मरण रखिये, समस्याओं से भी ज्यादा खतरनाक वे समाधान हो जाते हैं जो कि सच्चे न हो। क्योंकि समस्याएं तो एक तरफ बनी रहती हैं और समाधान दूसरी समस्याएं खड़ी कर देते हैं। इधर पांच हजार वर्षों में धर्म के नाम पर जो कुछ हुआ है उससे जीवन की कोई समस्या हल नहीं हुई, बल्कि और नयी समस्याएं खड़ी हो गयीं। और हर समाधान अगर नयी समस्याएं खड़ी कर देता हो तो ऐसे समाधानों से विदा लेने का समय आ गया है, उन्हें विदा दे देनी जरूरी है, क्योंकि बहुत सी व्यर्थ की समस्याएं उनके कारण पैदा हुई हैं और समाधान तो कोई भी नहीं हुआ है। मनुष्य ईश्वर के कितने निकट पहुंचा है? मन्दिर तो बढ़ते जाते हैं, मस्जिद तो बढ़ती जाती हैं, गिरजे रोज नये नये खड़े होते जाते हैं और ऐसा मालूम होता है कि अगर यह विकास इसी भांति चला तो आदमी के रहने के लायक मकान न बचेंगे, ईश्वर सब मकान घेर लेगा। लेकिन इन मन्दिरों में, इन गिरजों में इन मस्जिदों में होता क्या है? क्या मनुष्य के जीवन से कोई ईश्वर सम्बन्ध वहां पैदा होता है? क्या मनुष्य के जीवन में कोई क्रान्ति वहां घटित होती है? क्या मनुष्य के जीवन का दुख और अन्धकार वहां दूर होता है, क्या मनुष्य के जीवन की हिंसा और घृणा वहां समाप्त होती है? क्या मनुष्य

के जीवन में प्रेम और प्रार्थना के बीज वहां पैदा होते हैं ? क्या कोई सौन्दर्य के फूल मनुष्य के हृदय पर वहां पैदा होते हैं, बनते हैं और निर्मित होते हैं ? नहीं। बिल्कुल नहीं। बल्कि वहां मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा पैदा होती है, क्रोध और हिंसा पैदा होती है। आज तक जितना संघर्ष और रक्त पात मन्दिरों और मूर्तियों के नाम पर हुआ है और किसी चीज के नाम पर हुआ है ? और मनुष्य की जितनी हत्या मनुष्यों के द्वारा निर्मित धर्मस्थानों को लेकर हुई है और किसी बात से हुई है ? अगर हम अब भी इस बात को कहते चले गये कि हम इन्हीं स्थानों को धर्मस्थान मानते रहेंगे तो निश्चित मानिये कि धर्म के अवतरण की फिर कोई सम्भावना नहीं है।

एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है वह मैं आपसे कहूं।

एक चर्च के द्वार पर सुबह सुबह एक आदमी ने आकर दस्तक लगायी। मैं तो उसे आदमी कह रहा हूं लेकिन चर्च में जो लोग रहते थे वे उसे आदमी नहीं समझते थे। क्योंकि मन्दिरों ने आदमी और आदमी में फर्क पैदा कर रखा है। वह आदमी काले रंग का था और जिनका मन्दिर था और जिनका परमात्मा था वह सफेद रंग के लोग थे। उस मन्दिर के पुरोहित ने उस काले आदमी से कहा: तुम यहां कैसे आये ? उसने कहा:– मैं परमात्मा की खोज में आया हूं। पुरोहित ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा। काला आदमी, और सफेद आदमी के मन्दिर में आये, वह समझ में आने वाली बात नहीं थी, लेकिन पुराने दिन होते तो उसने तलवार निकाल ली होती और उससे कहा होता कि यहां से हट जाओ तुम्हारी छाया पड़नी भी खतरनाक है। लेकिन दिन बदल गये हैं और भाषायें बदल गई हैं। उस पुरोहित ने बहुत प्रेम से कहा, मेरे भाई मन्दिर में आने से क्या होगा, जबतक तुम्हारा हृदय शांत न हो और तुम्हारा मन विकारों से मुक्त न हो तबतक मन्दिर में आकर क्या करोगे। परमात्मा तो केवल उन्हें मिलता है जिनके हृदय शांत होते हैं और विकार से मुक्त होते हैं। तो तुम जाओ, पहले हृदय को पवित्र करो और फिर आना। उस पुरोहित ने सोचा होगा कि न होगा हृदय पवित्र और न यह वापस आयेगा। लेकिन यह बात उसने सफेद चमड़ी के लोगों से कभी भी नहीं कही थी। यह तो उस आदमी को उस मंदिर से दूर रखने का उपाय था। वह काला आदमी चला गया। कई महीने बाद रास्ते के चौराहे पर वह उस पुरोहित को दिखाई पड़ा। वह बहुत मग्न और बहुत आनन्दित था और उसकी आंखों में रोशनी झलकती थी। उस पुरोहित ने पूछा कि तुम दोबारा नहीं आये। उसने कहा कि मैं क्या करूं। मैंने मन

को पवित्र करने की कोशिश की। मुझसे जो बन पड़ता था वह मैंने किया। मैं शान्त हुआ और मैंने एकान्त खोजा और एक दिन रात परमात्मा ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिये और उसने कहा कि तू किसलिए पवित्र होने की कोशिश करता है। मैंने उससे कहा कि वह जो मंदिर है हमारे गांव में, वह जो चर्च है, मैं उसमें प्रवेश करना चाहता हूं और उसके पुरोहित ने कहा है कि पहले पवित्र हो जाओ तब आने के लिए द्वार खुलेगा। परमात्मा यह सुनकर हंसने लगा और उसने कहा कि तू बिल्कुल पागल है। कोशिश छोड़दे। दस साल से मैं खुद ही उस चर्च में घुसने की कोशिश कर रहा हूं। पुजारी मुझे भी नहीं घुसने देता। मैं खुद ही सफल नहीं हो सका और निराश हो गया हूँ तो तू वहां कैसे प्रवेश पा सकेगा ?

और यह बात एक मन्दिर के बाबत नहीं सभी मंदिरों के बाबत सच है। और यह बात एक पुजारी के सम्बन्ध में नहीं, सभी पुजारियों के सम्बन्ध में सच है। जहां भी मंदिर हैं और जहां भी पुजारी हैं वहां उन्होंने परमात्मा को कभी प्रवेश नहीं पाने दिया और न वे पाने देंगे। क्योंकि परमात्मा और पुजारी दोनों एक साथ नहीं चल सकते। परमात्मा प्रेम है, पुजारी व्यवसाय है। प्रेम और व्यवसाय का क्या सम्बन्ध है। जहां पुजारी हैं वहां दूकान है। वहां मंदिर कैसे हो सकता है। लेकिन अपनी उन दुकानों को उन्होने मंदिर बना रखे हैं और उन दुकानों के ग्राहकों को दूसरी दुकानों के खिलाफ बहुत घृणा से भर रखा है ताकि वे उनकी दुकानों को छोड़कर दूसरी दुकानों पर न चले जायें। एक मन्दिर दूसरे मंदिर के विरोध में है और एक मंदिर का परमात्मा दूसरे मंदिर के परमात्मा के विरोध में है। क्या यह धर्म की स्थिति है ? और क्या इसके द्वारा धर्म को गति मिली है, प्राण मिले हैं ? नहीं। धर्म निष्प्राण हुआ है। इस भांति का ईश्वर मर गया हो, इससे ज्यादा सुखद, सुसमाचार दूसरा और नहीं हो सकता। लेकिन अगर वह मर भी गया हो तो पुजारी इसकी खबर आपको पता नहीं चलने देंगे। क्योंकि यह आपको पता चल जाना बहुत खतरनाक होगा। इसलिए वह उस मरे हुए ईश्वर के आसपास भी मंत्र पढ़ते रहेंगे और पूजा करते रहेंगे। इसलिए नहीं कि परमात्मा से उन्हें बहुत प्रेम है, बल्कि इसलिए कि उनके जीवन का आधार वे ही पूजायें हैं, वे इसी से जीते हैं। यही उनकी आजीविका है।

जिन लोगों ने परमात्मा को आजीविका बनाया उन लोगों ने ही मनुष्य को परमात्मा से दूर करने के उपाय किये। तो जहां भी परमात्मा जीविका बन गया

हो, जान लेना कि वहां परमात्मा नहीं हो सकता। परमात्मा प्रेम है और प्रेम का व्यवसाय नहीं हो सकता है। उसकी आजीविका नहीं हो सकती। प्रार्थनाएं बेची नहीं जा सकती और प्रार्थनाएं दूसरों के लिए की भी नहीं जा सकती और प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं होता है और न ही कोई दलाल होता है। जहां दलाल हों और मध्यस्थ हों वहां प्रेम असम्भव है, वहां सौदा होगा, प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम सीधा होता है। प्रेम के बीच में कोई मौजूद नहीं होता। परमात्मा और मनुष्य के बीच में जिस दिन से पुजारी मौजूद हुआ उसी दिन से सारी बात खराब हो गई है। ऐसा परमात्मा मर जाय इससे ज्यादा शुभ कुछ भी नहीं है। क्योंकि ऐसा परमात्मा जिन्दा ही नहीं है और इसकी मृत्यु से उस परमात्मा के जीवन की तरफ हमारी आखें उठनी शुरू होंगी जो कि वस्तुतः जीवन है, महान जीवन है, परम जीवन है। हिन्दू मुसलमान, ईसाई, जैन और बौद्ध और इस तरह के सभी नाम दुनियां से बिदा होने चाहिए तो दुनियां में धर्म का जन्म हो सकता है और इसी भांति शास्त्रों, शब्दों और सिद्धान्तों का ईश्वर भी मर गया है। वह भी सच्चा ईश्वर नहीं है। शब्द, शास्त्र और सिद्धान्त मनुष्य के चित्त और बुद्धि के अनुमानों से ज्यादा नहीं है। वे अन्धेरे में फेंके गये उन तीरों की भांति हैं जो लग भी जाता हो तो भी उनके लगने का कोई अर्थ नहीं होता। उनका लग जाना बिल्कुल सांयोगिक है। मनुष्य सोचता रहा, जीवन में जहां जहां अज्ञात है और अंधेरा है, मनुष्य विचार करता रहा, अनुमान करता रहा। अनुमानों के बहुत शास्त्र सारी जमीन पर इकट्ठे हो गये। इन अनुमानों में, इन कल्पनाओं में, इन धारणाओं में कोई सत्य नहीं है, कोई ईश्वर नहीं है। क्योंकि ईश्वर का अनुभव तो वहीं शुरू होता है जहां सब अनुमान, सब विचार, सब धारणाएं शांत हो जाते हैं। जहां चित्त, मौन और निर्विचार को उपलब्ध होगा वहीं वह सत्य को जानने में समर्थ होता है। जहां सारे शास्त्र शुन्य हो जाते हैं वहीं उसका उद्घाटन होता है जो सत्य है। इसलिए शब्दों में जो भटके हों, शब्दों को जिन्होंने पकड़ रखा हो, शास्त्रों को जिन्होंने अपनी आत्मा समझ रखा हो उनका सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। अनुमान करने में मनुष्य की बुद्धि प्रखर है, तीव्र है। और अनुमान के द्वारा अपने अज्ञान को ढ़क लेने में भी हम बहुत होशियार हैं। जहां जहां अज्ञान है वहां वहां हम कोई अनुमान कर लेते हैं, कोई कल्पना कर लेते हैं और धीरे धीरे उस कल्पना पर विश्वास करने लगते हैं। क्यों ? क्योंकि उस कल्पना पर विश्वास करने से हमारे अज्ञान का बोध नष्ट हो जाता है। हमें लगता है कि हम जानते हैं। जिस मनुष्य को यह लगता हो, मैं जानता हूं ईश्वर

को, वह ईश्वर को कभी नहीं जान सकेगा। क्योंकि उसका जानना निश्चित ही कहीं शास्त्रों और सिद्धान्तों की पकड़ पर निर्भर होगा। कुछ उसने सीख लिया होगा, कुछ उसने समझ लिया होगा, कुछ उसने स्मरण कर लिया होगा वही उसका ज्ञान बन गया होगा। ऐसा ज्ञान नहीं, बल्कि ऐसा अज्ञान कि मैं जीवन सत्य के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता हूं, इस बात का बोध कि मुझे जीवन सत्य के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं, कुछ भी ज्ञात नहीं, ऐसे अज्ञान (Ignorance) का स्पष्ट एहसास, ऐसी प्रतीति कि मुझे पता नहीं, मनुष्य के चित्त को शब्दों के भार से मुक्त कर देती है और वह मौन पैदा होता है जो उसे जानने की तरफ ले जाता है।

किसी ने यह घोषणा कर दी एथैंस में कि सुकरात सबसे बड़ा ज्ञानी है। लोग सुकरात के पास गये और उन्होंने सुकरात से कहा कि लोगों ने घोषणा की है कि तुम सबसे बड़े ज्ञानी हो। सुकरात हंसा और उसने कहा कि जाओ उनसे कहना कि जब मैं युवा था तो मुझे ऐसा भ्रम था कि मैं ज्ञानी हूं। फिर जैसे जैसे मेरी उम्र बढ़ी, मेरा ज्ञान विखरता गया और पिलघता गया और बह गया और अब जबकि मैं मौत के करीब आ गया हूं, और अब जब मुझे किसी से कोई भी डर नहीं है, मैं एक सच्ची बात कह देना चाहता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता और उन लोगों से कहदो कि सुकरात तो कहता है कि वह महा अज्ञानी है। वे लोग गये और उन्होंने जाकर जो लोग इसकी घोषणा गांव में करते फिरते थे, उनसे कहा कि सुकरात तो स्वयं कहता है कि वह महा अज्ञानी है। उन्होंने कहा इसी लिए, इसीलिए तो हम कहते हैं कि उसका परम ज्ञान उपलब्ध हुआ है। तभी तो वह, यह कहने में समर्थ हो गया और इस सत्य को जानने में समर्थ हो गया है कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। इस शान्त, मौन, और निर्दोष स्थिति (Innocent state) में ही जानने के द्वार खुल सकते हैं। जिसको यह ख्याल हो कि मैंने जान लिया है, उसका तो अहंकार और मजबूत हो जाएगा। ज्ञानियों के अहंकार से ज्यादा बड़ा अहंकार और किसी का नहीं होता है। उनका तो मैं भाव (Ego) कि मैं कुछ हूं और भी प्रबल हो जाता है। और जिसको यह वहम हो जाय कि मैं कुछ हूं वह परमात्मा से नहीं मिल सकेगा, क्योंकि परमात्मा से मिलने की पहली शर्त यह है जैसे बूंद अपने को सागर में खो देती है ऐसे ही कोई अपने अहंकार को सर्व के साथ निमज्जित करदे, सर्व के साथ खो दे वह जो चारो तरफ फैला हुआ विस्तार है, वह जो असीम और अनन्त सत्ता है चारो ओर उसमें अपने को डुबा दे और खो दे। सुकरात ने कहा कि मैं महान अज्ञानी हूं। क्या

आप भी किसी क्षण में इस बात को अनुभव कर पाते हैं कि आप महान अज्ञानी हैं। अगर कर पाते हैं तो कहीं न कहीं परमात्मा वह क्षण निकट लायेगा जब ज्ञान का जन्म हो सकता है। लेकिन यदि आप भी अपने मन में यह दोहराते हैं कि मैं जानता हूं तो स्मरण रखना यह जानने का भ्रम कभी भी नहीं जानने देगा। ज्ञानियों का ईश्वर मर गया उनका ईश्वर जिनको यह ख्याल है कि हम जानते हैं। पंडितों का ईश्वर मर गया है। अब तो उन लोगों के ईश्वर के लिए जगत में जगह होगी जिनके हृदय बच्चों की तरह सरल हों और वह यह कह सकें कि हम नहीं जानते हैं। और उस न जानने के बिन्दु से जिनकी खोज शुरू हो सके, जो न जानने के स्थान की खोज कर सकें और यात्रा कर सकें, सच तो यह है कि, कोई भी खोज (Inquiry) तभी प्रारम्भ होती है जब न जानने का भाव गहरा और प्रबल हो जाय। जब जानने का भाव गहरा हो जाता है तो खोज बन्द हो जाती है, टूट जाती है, समाप्त हो जाती है।

लेकिन हम सभी लोग कुछ न कुछ जानने के ख्याल में हैं। अगर हमने गीता स्मरण कर ली है या कुरान या बाइबिल, या कोई और शास्त्र, और अगर हमें वे शब्द पूरी तरह कंठस्थ हो गये हैं और जीवन जब भी कोई समस्यायें खड़ी करता है तो हम उन सूत्रों को दोहराने में सक्षम हो गये हैं। और अगर हमें इस भांति ज्ञान पैदा हो गया है तो हम बहुत दुर्दिन की स्थिति में हैं, बहुत दुर्भाग्य है। यह ज्ञान खतरनाक है। यह ज्ञान कभी सत्य को जानने नहीं देगा और कभी ईश्वर को नहीं जानने देगा। कभी ईश्वर से यह ज्ञान सम्बन्धित नहीं होने देगा। यह ज्ञान जो शब्दों से और शास्त्रों से आता है ज्ञान ही नहीं है, यह अज्ञान को छिपा लेने के उपाय से ज्यादा नहीं है। हां, यह हो सकता है कि इस अज्ञान में भी कभी कभी कोई तीर लग जाता हो। कहीं छोटी जगह, तो यह हो सकता है। कभी कभी पागल भी ठीक उत्तर दे देते हैं और कभी कभी तो अनुमान से भी अन्धेरे में सच्चाइयां साबित हो जाती हैं। लेकिन उनपर कोई जीवन खड़ा नहीं हो सकता है।

मैंने सुना है, एक गांव में एक स्कूल के निरीक्षण के लिए एक इंस्पेक्टर आया। खबर उसके पहले ही उस गांव में आ गयी थी कि उस इंस्पेक्टर का दिमाग खराब हो गया है, लेकिन सरकारी काम था और जैसे कि सभी सरकारी काम होते हैं यह खबर जाने पर भी कि उसका दिमाग खराब हो गया है अभी उसकी चिकित्सा की व्यवस्था होने में काफी देर थी या उसे नौकरी से निवृत्त करने में भी काफी देर थी। वह पागल हो गया था, लेकिन अपने काम को जारी रखे हुए था बल्कि

और भी मुस्तैदी से। पागल काम करने में बड़े कर्मठ हो जाते हैं वे जो भी करते हैं पूरी ताकत से करते हैं। वह और भी जोर से निरीक्षण करने लगा। अब वह बैठता नहीं था घर पर। वह गांव गांव निरीक्षण करता फिरता था और स्कूल के रजिस्टर में उस स्कूल का रिकार्ड खराब करता था। क्योंकि उसके प्रश्नों के उत्तर देना बिल्कुल असम्भव था। वह उस गांव में भी आया जिसकी मैं बात कर रहा हूं। उस गांव का अध्यापक डरा हुआ था। प्रधान अध्यापक डरा हुआ था, बच्चे डरे हुए थे कि क्या होगा। वह आया और सबसे बड़ी जो कक्षा थी उस स्कूल में, उसमें जाकर उसने कुछ प्रश्न पूछे। सबसे पहले उसने यह कहा कि जो प्रश्न मैं पूछ रहा हूं इसका कोई भी अब तक उत्तर नहीं दे पाया है। अगर तुम बच्चों में से किसी ने भी इसका उत्तर दे दिया तो फिर मैं दूसरा प्रश्न नहीं पूछूंगा। क्योंकि एक चावल को ही परखना काफी होता है। बाकी चावलों के पका होने का पता चल जाता है। अगर तुम इसका उत्तर नहीं दे सके तो मैं और भी प्रश्न पूछूंगा, लेकिन फिर वे इससे भी ज्यादा कठिन हैं। उसने प्रश्न पूछा, उसने पूछा कि दिल्ली से एक हवाई जहाज कलकत्ता की तरफ उड़ा वह घंटे भर में दो सौ मील चलता है तो क्या तुम हिसाब लगाकर बता सकते हो कि मेरी उम्र क्या है? सारे बच्चे घबरा गये। बच्चे क्या बूढ़े होते तो वे भी घबरा जाते। इससे कोई सम्बन्ध नहीं था। प्रश्न बिल्कुल असंगत था। उसमें कोई सम्बन्ध ही नहीं था। दिल्ली से हवाई जहाज कलकत्ता किसी रफ्तार से जाय उससे क्या सम्बन्ध था उसकी उम्र का। लेकिन और बड़ी हैरानी की बात थी कि एक बच्चे ने हाथ हिलाया उत्तर देने के लिए। तबतो अध्यापक और प्रधान अध्यापक और भी हैरान हुए। उसका प्रश्न तो पागलपन का था, लेकिन एक बच्चा उत्तर देने को भी राजी है। जब उसने हाथ हिलाया था तब इंस्पेक्टर बहुत खुश हुआ था। उसने कहा कि यह पहला मौका है कि ऐसा बुद्धिमान बच्चा मुझे मिला जिसने हाथ हिलाया उत्तर देने के लिए। तुम खड़े हो और उत्तर दो। उस बच्चे ने कहा यह उत्तर मैं ही दे सकता हूं और आप सारी जमीन पर घूम लेते तो भी उत्तर नहीं मिलता। जैसे आपका प्रश्न आप ही कर सकते हैं, यह उत्तर भी सिर्फ मैं ही दे सकता हूं। इंस्पेक्टर ने कहा कितनी है उम्र मेरी? उस लड़के न कहा कि आपकी उम्र ४४ वर्ष है। वह यह सुनकर हैरान हो गया। उसकी उम्र ४४ वर्ष थी। उसने कहा किस विधि से तुमने यह गणित हल किया। उसने कहा बहुत आसान है। मेरा बड़ा भाई आधा पागल है उसकी उम्र बाइस वर्ष है तो बिलकुल आसान

सवाल है आपकी उम्र ४४ वर्ष होनी ही चाहिए।

यह ईश्वर के सम्बन्ध में, आत्माओं के सम्बन्ध में, परलोक, स्वर्ग और नर्क और मोक्ष के सम्बन्ध में जो प्रश्न पूछे गये हैं वह इस पागल के प्रश्न से भी ज्यादा असंगत हैं। और इनके उत्तर देने वाले भी मिल गये, यह कितनी असंगत बात है कि हम पूछें ईश्वर कैसा है, कहां है कहां रहता है। हम, जिन्हें अपना ही पता नहीं, हम ईश्वर के सम्बन्ध में यह प्रश्न पूछें। हम, जिन्हें यह भी पता नहीं कि हम कहां हैं, कौन हैं, हम यह पूछें कि ईश्वर क्या है, कैसा है, बिल्कुल ही असंगत है। लेकिन हमारे प्रश्न चाहे असंगत हों, इनके उत्तर देने वाले लोग भी मौजूद हैं। जो बताते हैं कि ईश्वर कहां है। उन्होंने नकशे भी बनाये हैं और उन्होंने किताबें भी छापी हैं और उसमें उसका सब पता ठिकाना दिया हुआ है। पुराने जमाने में फोन नम्बर नहीं होते थे इसलिए उन्होंने फोन नम्बर नहीं लिखा भगवान का। अगर वे फिरसे नये संस्करण निकालेंगे अपनी किताबों के तो उसमें फोन नम्बर भी होगा। और फिर वहां जाने की जरूरत नहीं है और आप घर से ही बात कर लेंगे। उन्होंने फासला तक बताया है। स्वर्ग के रास्ते और नर्क के रास्ते बनाये हैं और नकशे बनाये हैं और मंदिरों में वे नकशे टंगे हुए हैं। और इन सारी बातों पर अगर नकशा बनाने वालों में विरोध है, होना स्वाभाविक है, क्योंकि यह तय करना कठिन है कि किसका नकशा ठीक है और अगर इन सम्बन्धों में कि ईश्वर की शक्ल कैसी है, स्वभावतः चीनी में और भारतीय में झगड़ा होना स्वाभाविक है। क्योंकि चीनी जो शक्ल बनायेगा वह चीन के आदमी जैसी होगी। और भारतीय जो शक्ल बनायेगा वह भारतीय आदमी जैसी होगी। और नीग्रो जो शक्ल बनायेगा उसमें वह पतला होठ नहीं लगा सकता। उसके बाल घुंघराले होंगे। शक्ल काली होगी और होठ ऐसे होंगे जैसे नीग्रो के होते हैं। तो झगड़ा होना स्वाभाविक है कि ईश्वर के होंठ कैसे हैं। तो भारतीयों का उत्तर दूसरा होगा। नीग्रो का उत्तर दूसरा और चीनी का उत्तर दूसरा, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। और इन झगड़ों को तय करने का रास्ता फिर एक ही रह जाता है कि कौन कितनी जोर से तलवार चला सकता है और कितने जोर से लोगों को मार सकता है। जो जितना ज्यादा जोर से मार सकता है और मारने में जीत सकता है उसका उत्तर सही है। तो उस स्कूल के इंस्पेक्टर पर मत हंसिये। सारी दुनिया के इतिहास पर हंसिये, पंडितों पर हंसिये। उत्तर के सही होने का सबूत क्या है। सबूत यह है कि हम सात करोड़ हैं तो तुम बीस करोड़ हो। सबूत यह है कि अगर तुम लड़ोगे तो हम तुम्हारी

हत्या कर देंगे। तुम हमारी नहीं कर पावोगे। इसलिए हम सही हैं। इसीलिए तो सारी दुनियां के धर्म अपनी संख्या बढ़ाने के लिए पागल हैं। क्योंकि संख्या बल है और सत्य की गवाही में संख्या के सिवाय और कौनसा बल है ? यह सारी दुनिया के धर्मपुरोहित राजाओं को दीक्षित करने के लिए दीवाने और पागल रहे हैं। वह इसलिए कि राजा के पास बल है और जो राजा जिस धर्म में दीक्षित हो जाएगा वह धर्म सत्य हो जाएगा। और लड़कर जो लोग यह तय करना चाहते हों कि कुरान सही है, कि बाइबिल, कि गीता उनसे ज्यादा पागल और कौन होगा। लड़ाई क्या किसी बात की सच्चाई का सबूत है या कि जीत जाना कोई सच्चाई का सबूत है। लेकिन इन उत्तरों का भिन्न भिन्न होना स्वाभाविक हैं क्योंकि वह मनुष्य की कल्पना से निकले है और मनुष्य के अपने अनुभव से निकले हैं। अगर आप तिब्बतियों से पूछें कि नर्क में क्या है तो वे कहेंगे कि नर्क बहुत ठंडा है, बहुत शीत है। क्योंकि तिब्बत ठंड से परेशान है, शीत से परेशान है। तो जो जो तिब्बत में पाप करते हैं उनको ठंडे जगह में भेजना स्वाभाविक है। यह बिल्कुल अनुभव की बात है कि उनको ठंडी जगह में भेज दो जो पाप करते हैं। लेकिन भारतीयों से पूछिये कि तुम्हारा नर्क कैसा है तो वहां पर आग की लपटें जल रही हैं, कड़ाहे जल रहे हैं और उन जलते हुए कड़ाहों में लोगों को डाला जा रहा है, क्योंकि हम गरमी से परेशान हैं, सूरज तप रहा है तो हमारा नरक गर्म होगा, यह बिल्कुल स्वाभाविक है, यह हमारा अनुमान बिल्कुल स्वाभाविक है। हम अपने पापी को ठण्डी जगह नहीं भेज सकते हैं, ठण्डी जगह तो हम अपने मिनिस्टरों को भेजते हैं। ठण्डी जगह तो हम अपनी राजधानियां बदलते हैं, पापियों को ठण्डी जगह भेजगें तब तो बड़ी गड़बडी हो जायगी, पापियों को हम गरम जगह भेजेंगें। यह हमारी कामना गरम जगह भेजने की, उनको सताने की, हमारे नरक का निर्माण बन जाती है। नरक हमारा गरम हो जाता है। यह हमारा अनुमान है। इस अनुमान से नरक के होने का न पता चलता है कि वह गरम है या ठंडा है या वह है भी या नहीं। इससे केवल एक बात का पता चलता है कि किस कौम ने और किस तरह के लोगों ने यह कल्पना की है। तो हमारे शास्त्र यह नहीं बताते कि सत्य कैसा है। हमारे शास्त्र यह बताते हैं कि उनको बनाने वाले लोग कैसे हैं। हमारी कल्पनायें सत्य के सम्बन्ध में यह नहीं बतातें कि सत्य कैसा है। वह यह बताती हैं कि इसकी कल्पना करने वाले लोग किस स्थिति में हैं, किस मनोदशा में हैं। और फिर हम इनपर लड़ाइयां लड़ते हैं, इन अनुमानों पर। इन अनुमानों

और इन शास्त्रों पर सारी दुनियां विभाजित और खड़ी है। और इन हवाई बातों पर हम एक दूसरे की हत्या करते रहे हैं। लेकिन हम लोगों को समझाते रहे हैं कि तुम मरो, फिक्र मत करो। जो धर्म के लिए मरता है वह स्वर्ग जाता है और तब ऐसे नासमझ खोज लेने कठिन नहीं हैं जो कि स्वर्ग जाने की उत्सुकता में जमीन को बर्बाद करने के लिए राजी हो जायें। और ऐसे पागल जमीन पर काफी हैं जिन्हें शहीद होने में बहुत मजा आ जाता है और यह सारा हमारा इतिहास ऐसे झूठे ईश्वरों के आसपास, इर्दगिर्द निर्मित हुआ है, शब्दों के आसपास अनुमानों के आसपास, सत्य के निकट नहीं। सत्य के निकट कोई संगठन खड़ा नहीं हो सकता। संगठन हमेशा झूठ के करीब ही खड़े हो सकते हैं। सत्य के इर्दगिर्द कोई संगठन, (Organization) खड़ा नहीं हो सकता। नहीं हो सकता इसलिए कि सत्य का अनुभव अत्यन्त वैयक्तिक है। समूह से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। दस आदमी इकट्ठे बैठकर सत्य का अनुभव नहीं कर सकते। भीड़ से उसका कोई वास्ता नहीं है। एक व्यक्ति अपने एकान्त में, तन्हाई में, अकेलेपन में अपने भीतर डूबता है, शान्त होता है, मौन होता है और उसे जानता है। व्यक्ति और व्यक्ति ही केवल सत्य को जानते हैं समूह और समाज नहीं। इकट्ठे होकर सत्य को नहीं जाना जा सकता है। इकट्ठे होकर संगठन बनाया जा सकता है, लेकिन इकट्ठे होकर धर्म को नहीं पाया जा सकता है।

संगठनों का ईश्वर मर गया है मर जाना चाहिए। लेकिन धर्म का ईश्वर, वह बात ही और है। वही अकेला जीवित है, वही अकेला जीवन है। उसके अतिरिक्त तो सब मृत्यु है, उसके अतिरिक्त तो कुछ है ही नहीं। उसको जानने के लिए संगठन में नहीं साधना में जाना जरूरी है। साधना अकेले की बात है। संगठन भीड़ और समूह की। और हम सारे लोग अब तक धर्म को समूह और संगठन की बात समझते रहे हैं। हम समझते हैं कि हिन्दू हो जाना धार्मिक हो जाना है, मुसलमान हो जाना, पारसी हो जाना, धार्मिक हो जाना है। कैसी पागलपन की बातें हैं। किसी एक संगठन के हिस्से हो जाने से कोई धार्मिक होता है। धार्मिक होने का अर्थ ही कुछ उल्टा है इससे। संगठन का हिस्सा होकर तो कोई धार्मिक नहीं होता, बल्कि संगठनों से जो मुक्त हो जाता है वह धार्मिक हो जाता है। समाज का हिस्सा होकर कोई धार्मिक नहीं होता। लेकिन अपने चित्त में जो समाज से पूर्णतया मुक्त हो जाता है वही धार्मिक हो जाता है। समाज और संगठन में तो हम किन्हीं और कारणों से इकट्ठे होते हैं, किसी भय के कारण, किसी सुरक्षा के लिए, किसी घृणा के लिए, किसी से लड़ने के लिए इकट्ठा होते हैं।

इस भय के कारण कि मैं अकेला बहुत कमजोर हूं। मैं दस के साथ हो जाऊं।

एक फकीर को, मंसूर को फांसी लगाई जा रही थी। लोग उसके हाथ काट रहे थे। लाखों लोग इकट्ठे हो रहे थे और उसपर पत्थर फेंक रहे थे। और वह व्यवहार कर रहे थे जो ईश्वर के आदमी के साथ हमेशा तथा-कथित धार्मिक लोग करते हैं। उसकी आंखें फोड़ डाली, उसके पैर काट डाले, उसपर पत्थर फेंक रहे थे। लेकिन वह फकीर मुस्करा रहा था और वह परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था लेकिन तभी एक फकीर ने भी जो उस भीड़ में खड़ा था एक मिट्टी का ढेला उठाकर उसकी तरफ फेंका। मंसूर अबतक मुस्करा रहा था। उसकी आंखें फोड़ दी गई थी। उनसे खून बह रहे थे। उसके पैर काट लिये गये। वह मरने के करीब था। उसपर पत्थर मारे जा रहे थे जो उसके शरीर को क्षत-विक्षति कर रहे हैं लेकिन वह हंस रहा था और उसकी आंखों में, उसके होठों, उसके हृदय में इस सारी पीड़ा और दुःख के बीच भी प्रेम था। लेकिन एक मिट्टी का ढेला भी एक फकीर ने फेंका जो भीड़ में खड़ा था और मंसूर रोने लगा। लोग बड़े हैरान हुए और एक आदमी ने पूछा कि तुम्हें इतना सताया गया, तुम नहीं रोये और एक छोटे से मिट्टी के ढेले फेंकने से इतने दुःखी हो गये? उसने कहा: और सबको तो मैं सोचता था कि नासमझ हैं। इसलिए परमात्मा से उनके लिए प्रार्थना करता था। इसलिए मुझे कोई दुख नहीं था, लेकिन वह आदमी जो खड़ा है वह फकीर है। वह वस्त्र पहने हुए है परमात्मा के और उसने भी मुझे पत्थर मारा है। तो मुझे हैरानी हुई, तो मेरी आंखों में आंसू आ गये। जब फकीर ही पत्थर मारेगा तो दुनिया का क्या होगा। लेकिन फकीर तो बहुत दिनों से पत्थर मार रहे हैं। और इसीलिए तो दुनियां का यह हाल हो गया है। भीड़ बिखर गई और वह आदमी मंसूर तो मर गया और सुबास तो उड़ गई। उस फकीर से कुछ दूसरे फकीरों ने पूछा कि तुमने पत्थर क्यों मारा तो उसने कहा कि भीड़ का साथ देने के लिए। अगर मैं भीड़ का साथ नहीं देता तो लोग समझते कि पता नहीं यह भी मंसूर को पसन्द करता है। उन फकीरों ने कहा कि पागल अगर साथ ही देना था तो उसका देना था जो अकेला था। साथ भी दिया उनका जो बहुत थे। उन फकीरों ने उससे कहा कि फकीरी के कपड़े छोड़ दे। क्योंकि जो भीड़ से डरता है वह धार्मिक नहीं हो सकता। जो भीड़ से डरता है वह कभी धार्मिक नहीं होता। क्योंकि अगर भीड़ ही धार्मिक होती तो दुनियां में अधर्म कैसे होता। अगर भीड़ धार्मिक होती तो फिर अधर्म और कहां होता। भीड़ तो अधार्मिक है इसलिए जो भीड़ से भयभीत

है और भीड़ का अंग बना रहता है वह कभी भी धार्मिक नहीं हो पायेगा। भीड़ से मन को मुक्त होना चाहिए। इसका यह मतलब नहीं कि मैं आपसे यह कह रहा हूं कि आप भीड़ को छोड़ दें और जंगल में चले जांय। जमीन बहुत छोटी है अगर सारे लोग जंगलों में चले गये तो वहां बस्तियां बस जायेंगी। उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि आप गांव छोड़ दें और जंगलों में चले जांय। कुछ लोगों ने यह गलती भी की है। जब उनसे यह कहा जाता है कि तुम भीड़ से मुक्त हो जाओ तो भीड़ को छोड़कर भागने लगते हैं। भागने वाला कभी मुक्त नहीं होता। भागने वाला भी डरने वाला है। अगर मुक्त होना है तो बीच में रहो और मुक्त हो जाओ। वह अभय (Fearlessness) का सबूत होगा। दो तरह के लोग हैं। भीड़ में रहते हैं तो भीड़ से डरकर और दबकर रहते हैं। यही डरे हुए लोगों को जब कभी यह ख्याल पैदा होता है कि मुक्त हो जायं तो यह जंगल की तरफ भागते हैं, क्योंकि वहां भीड़ ही नहीं रहेगी तो डरायें कौन? सवाल यह नहीं है कि डराने वाला न हो। सवाल यह है कि आप डरने वाले न रहें। इसलिए जंगल जाने से कुछ भी नहीं होगा। जो जंगल भागता है वह भयभीत है। जिन्दगी से भगाने वाला धर्म सच्चा धर्म नहीं हो सकता। जिन्दगी के बीच जहां जीवन चारों तरफ है वहीं मुक्त हुआ जा सकता है। मुक्त होने का मतलब कोई शारीरिक और बाह्य मुक्ति नहीं है। मुक्त होने का मतलब है मानसिक स्वतंत्रता, मुक्त होने का मतलब है मानसिक गुलामी को तोड़ देना। मुक्त होने का मतलब है भीड़ ने जो विश्वास (Belief) दिये हैं, उनसे छूट जाना। भीड़ ने जो बातें पकड़ा दी हैं हिन्दू होना, मुसलमान होना, इस मंदिर को पवित्र मानना, उस मंदिर को पवित्र नहीं मानना, यह जो बातें पकड़ा दी हैं, ये जो शब्द पकड़ा दिये हैं, ये जो सिद्धान्त पकड़ा दिये हैं इनसे मुक्त हो जाना। और मन की उस स्वतन्त्रता को पाकर ही सत्य की निजी वैयक्तिक खोज शुरू होती है। जो व्यक्ति दूसरे से उधार सत्यों को स्वीकार करके चुप हो जाता है उस आदमी की खोज सत्य के लिए नहीं है, क्योंकि सत्य कभी भी उधार (Borrowed) नहीं हो सकता है। जो भी चीज उधार ली जा सकती है वह संसार की होगी। और जो चीज कभी उधार नहीं पाई जा सकती वही केवल परमात्मा की हो सकती है। परमात्मा को उधार नहीं लिया जा सकता, परमात्मा कोई ऐसी चीज नहीं है कि हस्तान्तरणीय (Transferable) हो कि मैंने आपको दे दिया और आपने किसी और को दे दिया। जीवन में जो भी श्रेष्ठ, जो भी सत्य है, जीवन में जो भी सुन्दर है, जीवन में जो भी शिव

है वह कुछ भी एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं दिया जा सकता है। उसे तो सीधे स्वयं ही अपनी खोज, अपने प्राणों के आन्दोलन अपने हृदय की प्रार्थनाएं, अपने जीवन की प्यास से ही पाना होता है। वह निजी और वैयक्तिक खोज है।

समूह का ईश्वर मर गया है। मर जाने दें। सहारा दें कि वह मर जाय। उस व्यक्ति का एक एक इकाई का एक एक मनुष्य का ईश्वर ही सच्चा ईश्वर हो सकता है। संगठन का ईश्वर गया है। जाने दें। उसे रोकें न, घबरायें न कि उसके जाने से दुनियां का धर्म चला जाएगा। उसके होने की वजह से दुनियां में धर्म नहीं आ सका है। उसे जाने दें और उस ईश्वर की आकांक्षा करें, उस ईश्वर की अभीत्सा करें, उस ईश्वर के लिए प्रार्थना और प्रेम से भरें जो व्यक्ति का है, इकाई का है। समूह का और संगठन का नहीं है। मर जाने दें हिन्दू को, मुसलमान को, मर जाने दें बौद्ध को, बिदा हो जाने दो दुनिया से। कोई जरूरत नहीं है। एक एक व्यक्ति के ईश्वर को, एक एक व्यक्ति के धर्म को जन्म देना है। समूह के ईश्वर में बड़ी सुविधा है। आपको बिना खोजे धार्मिक हो जाने का मजा आ जाता है। बिना जाने जानने का सुख मिल जाता है। बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने का अहंकार तृप्त हो जाता है। रोज सुबह उठकर किसी मंदिर में हो आते हैं और अकड़ से चलते हैं कि मैं धार्मिक हूं। रोज सुबह किसी किताब को उठकर पढ़ लेते हैं और जानते हैं कि मैं धार्मिक हूं। अगर यह रोज सुबह उठकर किसी किताब को पढ़नेवाले लोग धार्मिक हैं, अगर ये रोज मंदिर में जाने वाले लोग धार्मिक हैं, तो दुनियां में इतना अधर्म क्यों है? यह अधर्म कहां से आ रहा है? सच तो यह है कि जो आदमी पचास वर्ष तक एक ही किताब को रोज रोज पढ़ता रहा है, मैं निवेदन करूंगा कि उसने उस किताब को एक दो दिन में नहीं पढ़ा होगा। क्योंकि अगर पढ़ लिया होता तो दोबारा दोहराने की जरूरत नहीं होती। अगर उसने जानलिया होता तो दोबारा पढ़ने का कोई सवाल नहीं होता, लेकिन उसे रोज दोहराता रहा है मशीन की भांति, यंत्र की भांति। पहले दिन जब उसने पढ़ा होगा तब शायद कुछ समझा भी होगा। पचास वर्ष पढ़ने के बाद वह जो पढ़ेगा कुछ भी नहीं समझेगा। क्योंकि अब तो वह यंत्र ही की भांति दोहराने में समर्थ हो गया है। अब उसे किताब पढ़ने की जरूरत नहीं है। अब तो उसके पास शब्द इकट्ठे हो गये हैं जिसको वह दोहरा लेता है। हमारा धर्म इन शब्दों का और इन संगठनों का धर्म रह गया है। ऐसे धर्म से मनुष्य के लिए कोई भविष्य नहीं है। ऐसे धर्म को जाने दें।

तो मैंने उस आदमी से उस पहाड़ पर कहा था कि जरूर मर गया है ईश्वर,

लेकिन यह चिन्ता की बात नहीं है। यह खुशी का अवसर है। यह स्वागत के योग्य घटना है, क्योंकि इससे यह सम्भावना बनती है कि शायद हम उस ईश्वर को खोज सकें जो कि वस्तुतः है। शायद हम उस धर्म को जान सकें, शायद हमारे प्राण उस धर्म खोज में गतिमान हो सकें जो कि जीवन को रूपान्तर कर देगा। जिसकें द्वारा जीवन प्रेम से और आनन्द से और आलोक से भर जाय, तो हम कहेंगे कि वह धर्म है। और जिसके द्वारा जीवन इन सारी बातों से न भरा हो, अंधकार अपनी जगह रहा हो और धर्म की पूजाएं और प्रार्थनाएं एक तरफ चलती रही हों और दुनिया की दीनता और दरिद्रता और दुःख और दुर्भाग्य, कोई भी परिवर्तित न हुआ हो और मनुष्य वैसे का वैसा हो रहा हो जैसा हजारों साल पहले था तो, ऐसे धर्म को लेकर क्या करेंगे, ऐसे धर्म को जिन्दा रखकर क्या करेंगे।

एक फकीर एक सुबह मस्जिद के पास से निकलता था। अन्धा था, आंखें नहीं थी। उसने मस्जिद के द्वार पर हाथ फैलाये और कहा कि मुझे कुछ मिल जाय। किसी राह चलते ने कहा कि तू पागल है। यह तो मस्जिद है, यहां क्या मिलेगा। यह तो परमात्मा का घर है, कहीं और मांग। वह फकीर भी अजीब रहा होगा। उसने कहा कि जब परमात्मा के घर कुछ नहीं मिलेगा तो फिर किस घर से मिलेगा। वह वहीं बैठ गया। वह अंधा आदमी और उसने कहा कि अबतो यहां से तभी बिदा होंगे जब कुछ मिल जाएगा। क्योंकि यह तो आखिरी घर आ गया। अब इसके आगे घर कहां है। और यदि यहां नहीं मिलने वाला है तो फिर हाथ फैलाये रखना व्यर्थ है। फिर अब आगे कहां जाऊंगा। यह तो अंतिम घर आ गया। इसके बाद घर और कौन सा है। वह वहीं रुक गया। आंखें उसकी जरूर अंधी रही होंगी, लेकिन हमसे ज्यादा देखने की उसमें ताकत रही होगी। उसने हाथ उठा लिये। एक वर्ष वह उस द्वार से नहीं हटा। दिन आये गये, रातें आयीं गयीं, वर्षा आयी बीती, मौसम आये और गये, चांद उगे और ढले, लोग हैरान थे वह फकीर वहां बैठा रहा। कोई आ जाता और दे जाता तो भोजन कर लेता। कोई पानी दे जाता तो वह पानी पी लेता था। लेकिन उस द्वार से नहीं हटा। और बरस पूरे होते होते एक दिन सुबह लोगों ने देखा कि वह नाच रहा है और उसकी अंधी आंखों में भी एक अद्भुत सौंदर्य की झलक मालूम हो रही है और उसके मुर्झाये चेहरे में कोई नया जीवन आ गया है। उसने लकडी फेंक दी और वह नाच रहा है। और कृतज्ञता के शब्द बोल रहा है। लोगों ने पूछा कि क्या हुआ है। उसने कहा कि यह मुझसे मत

पूछो और मुझे देखो और समझो। आप मुझसे यह मत पूछें कि क्या हुआ है। अब मुझे देखें और समझें। मेरी अंधी आंखों में दिखाई पड़ने लगा है। सब मैं देख रहा हूं। तुमको नहीं बल्कि उसको जो तुम्हारे भीतर है। अब मैं देख रहा हूं उसको जिसकी खोज थी। और अब मैं देख रहा हूं कि कहीं कोई मृत्यु नहीं, और अब मैं देख रहा हूं कि कोई दुख नहीं है। और मैं देख रहा हूं कि मैं तो मिट गया हूं लेकिन मिटकर भी मैंने कुछ पा लिया है। जो उससे बहुत ज्यादा बहुमूल्य है जो मैंने खोया है। मैंने न कुछ खोया और मैंने सब कुछ पा लिया है लेकिन यह मुझसे मत पूछो। और लोगों ने देखा कि उससे पूछने की कोई भी जरूरत नहीं। उसका आनन्द कह रहा था, उसका संगीत कह रहा था, उसका गीत कह रहा था, उसका नृत्य कह रहा था; अगर दुनिया में धर्म होगा तो लोगों का आनन्द कहेगा, लोगों का प्रेम कहेगा, लोगों के गीत कहेंगे। अभी तो लोगों के पास सिवाय आंसुओं के कुछ भी नहीं है और उनके हृदय में सिवाय अन्धकार के कुछ भी नहीं है। और उनके मस्तिष्क सिवाय उलझन, तनाव और अशांति के किसी चीज से परिचित नहीं हैं। यह जमीन के लोगों का हाल है। इस हालत में कैसे धर्म हो सकता है।

इसलिए जो धर्म है वह धर्म नहीं है। लोगों के आंसू इसके सबूत हैं। लोगों का अंधकार इसका सबूत है। तो यह आंसुओं और अंधकार वाला ईश्वर मर गया है तो अच्छा है। प्रकाश वाले ईश्वर का जन्म कैसे हो सकता है, यह आने वाली चर्चाओं में मैं आपसे बात करूंगा लेकिन एक बात कह दूं। मेरी बातों से उसका जन्म नहीं हो सकता। मेरी बातें उसके लिए ज्ञान नहीं बन सकती हैं। इसलिए और लोगों को सुनने जाते होंगे, वे देते होंगे आपको ज्ञान। मैं इन तीन दिनों में कोशिश करूंगा कि आपका सब ज्ञान छीन लूं। आप अज्ञानी हो जांय। परमात्मा करे आपका सब ज्ञान छिन जाय और आप अज्ञान की सरलता में खड़े हो जांय तो शायद उसे जान सकें जो कि सत्य है।

सरलता है सत्य का द्वार

(एक प्रवचन)

संकलन : श्री निकलंक

कल सन्ध्या स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं हैं। चित्त स्वतन्त्र हो, कोई मानसिक दासता और गुलामी न हो, कोई बंधे हुए रास्ते, बंधे हुए विचार और चित्त के ऊपर किसी भांति की जकड़न न हो। यह पहली शर्त मैंने कही है, सत्य को जिसे खोजना हो उसके लिए।

निश्चित ही जो स्वतन्त्र नहीं है वह सत्य को नहीं पा सकेगा। और प्रथम परतन्त्रता हमारी बहुत गहरी है। मैं उस स्वतन्त्रता की बातें नहीं कर रहा हूं जो राजनीतिक होती है, समाजिक होती है या आर्थिक होती है। मैं उस परतन्त्रता की बात कर रहा हूं जो मानसिक होती है। और जो मानसिक रूप से परतन्त्र है वह और चाहे कुछ भी उपलब्ध कर ले, जीवन में आनन्द को, प्रभात को, आलोक को अनुभव नहीं कर सकेगा। यह मैंने कल कहा। चित्त की स्वतन्त्रता पहली भूमिका है। आज सुबह दूसरी भूमिका पर आपसे कुछ विचार करूं। दूसरी भूमिका है चित्त की सरलता। पहली भूमिका है चित्त की स्वतन्त्रता, दूसरी भूमिका है चित्त की सरलता। जिनके चित्त जटिल हैं, उलझे हुए हैं, बन्धनग्रस्त हैं वे कभी भी सत्य को जानने में समर्थ नहीं होते। और हमारे चित्त सरल बिल्कुल नहीं हैं, हमारे चित्त बहुत जटिल और उलझे हुए और बन्धनग्रस्त हैं। बहुत विरोधाभासों से भरे हुए हैं, बहुत अराजक हैं। चित्त की यह जटिलता की बाधा है, क्योंकि जो अपने भीतर उलझा है वह बाहर आंख कैसे खोल सकेगा। जो अपने भीतर बहुत व्यस्त है और संघर्ष में है वह सत्य के प्रति उन्मुख कैसे

हो सकेगा। जो अपन से लड़ रहा है और अपने ही भीतर खण्डित है वह अखण्ड को कैसे जान सकेगा। हम सारे लोग खण्डित हैं, अपने ही भीतर बहुत खण्डों में विभाजित हैं। और वे सब खण्ड भी एक दूसरे के विरोध में खड़े हैं।

वस्तुतः हर आदमी के भीतर बहुत से आदमी है। आप एक भीड़ हैं, आपके भीतर कोई व्यक्ति नहीं है। आप कोई व्यक्ति (Individual) नहीं है, आपके भीतर तो एक भीड़ भरी हुई है, हम साधारणतः सोचते हैं कि एक ही चित्त हमारे पास है। लेकिन स्थिति उल्टी है; मनुष्य बहुचित्तवान (Poly Psychic) बहुत से मन एक ही साथ हैं। और आप खुद विचार करें तो दिखायी पड़ेगा कि बहुत से चित्त हैं आपके पास। जब आप क्रोध में होते हैं तब क्या आपके पास वही चित्त है जब आप बाद में पश्चाताप करते हैं। पश्चाताप करने वाला चित्त बिल्कुल दूसरा है। क्रोध करने वाला चित्त बिल्कुल दूसरा है। इसीलिए आप बारबार पश्चाताप करते हैं और फिर बारबार क्रोध करते हैं। एक ही भूल आप हजार बार करते हैं और भूल को करने के बाद पछताते हैं, दुखी होते हैं, निर्णय लेते हैं कि अब यह भूल नहीं करूंगा। अगर आप एक ही आदमी होते, आपके भीतर एक ही मन होता तो निर्णय पूरा हो जाता, लेकिन आपके भीतर जो मन निर्णय करता है वह मन अलग है और जो मन क्रिया करता है, वह मन अलग है। इसलिए आपके निर्णय रहते हैं। और जीवन जैसा था वैसा ही चलता रहता है। रात्रि आप तय करके सोते हैं कि सुबह चार बजे उठ जाऊंगा। पूरे मन से निर्णय करते हैं कि मैं सुबह चार बजे उठूंगा। सुबह चार बजे कोई आपसे कहता है, पड़े रहो, क्या फायदा है? आप सो जाते हैं। सुबह उठकर पूछते हैं और कहते हैं कि यह कैसे हुआ। तय किया था कि उठूंगा, फिर उठा नहीं। कल जरूर उठूंगा। कल आप फिर पाते हैं कि आपके भीतर कोई कह रहा है कि क्या फायदा उठने का। सर्दी बड़ी है, सोये रहो।

यह मन क्या वही है जिसने निर्णय किया था, या कि कोई दूसरा है। मन आपका बहुत खण्डों में विभाजित है। उसमें बहुत टुकड़े टुकड़े हैं। और इन टुकड़ों के कारण आपके भीतर एक जटिलता पैदा होती है। जिसका मन एक नहीं है वह जटिल होगा ही। और जटिलता अनन्तगुना हो जाती है, क्योंकि एक मन दूसरे मन के विरोध में है। थोड़ा विचार करें, आपने अपने ही हाथ से ये विरोध खड़े कर लिए हैं। शिक्षा और संस्कार ने मन को खण्ड खण्ड कर दिया है, उसकी अखण्डता (Integration) नष्ट हो गयी है।

आप कहते हैं कि आप एक आदमी हैं। क्योंकि आपका एक ही नाम है, एक ही लेबल है। सारे लोग जानते हैं कि आप एक ही आदमी हैं। अपने भीतर खोजें तो आपको बहुत आदमी वहां मिलेंगे। आपके विरोध में आपसे भिन्न अनेक अनेक आवाजें आपके भीतर सुनायी पड़ेंगी। क्या कभी आपने ख्याल किया है कई बार आप कहते हैं कि मैंने अपने बावजूद ऐसा काम किया है (In spite of myself) एक आदमी किसी को क्रोध में मार देता है और बाद में कहता है कि मैंने अपने बावजूद मार दिया। यह कैसे पागलपन की बात है। अपने बावजूद कैसे मार सकते हैं, अगर आपके भीतर आपके विरोधी भी मौजूद न हों। आपने अनेक बार अनुभव किया होगा, क्रोध जब मैंने किया तब में मौजूद ही नहीं था। आपने अनेक बार अनुभव किया होगा, जब मैं वासना से भर गया तो मैं, मैं नहीं था, न मालूम कौन हो गया। क्रोध में क्या आप वही होते हैं जो आप शान्ति में हैं? प्रेम में क्या आप वही होते हैं जो आप घृणा में हैं? नहीं, आप नहीं होते, आपके चेहरे बदल जाते हैं। आपके भीतर कोई चीज बदल जाती है। आपके भीतर बहुत सी भीड़ है मन की, बहुत से टुकड़े हैं। कोई एक टुकड़ा आपको पकड़ लेता है और आप एक काम कर जाते हैं। जैसे कि गाड़ी की घुरीं पर गाड़ी का चाक घूमता है उसके आड़े (Spoke) कभी कोई एक आड़ा ऊपर होता है, कभी कोई नीचे हो जाता है और आड़े बदलते रहते हैं। वैसे ही आपका चित्त है। उसमें बहुत चित्त हैं। कोई चित्त ऊपर होता है, कोई नीचे होता है और इससे जटिलता पैदा हो जाती है। सरल तो केवल वही हो सकता है जिसके पास एक मन हो। वह तो जटिल होगा ही जिसके पास अनेक मन हैं और यह अनेक मन भी ऐसे हैं जिनमें से एक दूसरे का किसी को पता ही नहीं। यह इसी बात से आपको पता चल जायगा कि, आपके संकल्प सब अधूरे रह जाते हैं। क्योंकि जो मन संकल्प करता है वह मन पूरा करते वक्त मौजूद ही नहीं होता। आपने कितनी बार तय नहीं किया है कि मैं सत्य बोलूं, समय आता है और आप पाते हैं कि आप असत्य बोल रहे हैं। कितनी बार तय किया है कि मैं सबको प्रेम करूं और समय आता है और आप पाते हैं कि आप घृणा कर रहे हैं। कितनी बार तय किया है कि सब मेरे मित्र हों लेकिन समय आता है और अनेक आपके शत्रु प्रतीत होते हैं। आप ही तय करते हैं, आप ही निर्णय करते हैं फिर इसका विरोध कैसे उठ आता है? जो विरोध उठ आता है वह आपके भीतर मौजूद है। जिनको आप श्रद्धा करते हैं, उनके ही प्रति आप मन में अपमान का भाव भी लिए होते हैं। जिनको आप

सम्मान करते हैं उन्हीं को आप घृणा भी करते रहते हैं। जिनका आप सम्मान करते हैं, उन्हीं का अपमान करने की भी इच्छा मन में बनी रहती है। एक ही साथ आपके भीतर विरोध चलता रहता है। इसलिए आप प्रेमियों को निरन्तर लड़ते देखेंगे। उन्हीं से प्रेम करते हैं, उन्हीं से लड़ते हैं, उन्हीं को घृणा भी करते हैं। मित्रों में भी आप देखेंगे, श्रद्धालुओं में भी आप देखेंगे। हमारे एक चित्त का हिस्सा जो करता है उसके ही विरोध में हमारे चित्त के दूसरे हिस्से खड़े होते हैं इसीलिए प्रेम जरा सी देर में घृणा में बदल जाता है।

मैं अभी वहां दिल्ली था। किसी ने मुझसे कहा कि जिसको हम प्रेम करते हैं उसको तो हम प्रेम ही करते हैं। यह आप कैसे कहते हैं कि विरोध भी उपस्थित रहता है? मैंने उनसे कहा कि समझ लें कि आप अपनी पत्नी को प्रेम करते हैं। अब कल आपको पता चल जाय कि आपकी पत्नी किसी और को प्रेम करती है तो क्या होगा? उसी क्षण आपका प्रेम घृणा में बदल जायगा, और प्रेम क्या कभी घृणा में बदल सकता है? यह तो असम्भव है। असल में घृणा भीतर छिपी बैठी थी, ऊपर प्रेम था, पीछे घृणा थी। अगर प्रेम का अवसर निकल गया, प्रेम हट जायगा, घृणा ऊपर आ जायगी।

एक फकीर हुई राबिया नाम की स्त्री। वह एक अद्‌भुत फकीर औरत हुई। उसने कुरान में पढ़ा, एक वचन आता है कि शैतान से घृणा करो। उसने उस वचन को काट दिया। फिर हसन नाम का एक दूसरा फकीर यात्रा पर निकला और उसी झोंपड़े में मेहमान हुआ। सुबह सुबह उसने कहा कि मैं जरा कुरान पढ़ना चाहता हूं। कुरान पढ़ने को दी गयी तो उसने देखा कि उसमें तो एक लकीर कटी हुई है। धर्मग्रन्थ में संशोधन! पवित्र वचन में संशोधन! उसने कहा, किस पागल ने कुरान में संशोधन कर दिया। राबिया ने कहा मुझे ही करना पड़ा।

—"तुमने यह कैसे किया? यह ग्रन्थ तो अपवित्र हो गया।"

राबिया ने कहा, मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ गयी हूं। इसमें लिखा है कि शैतान को घृणा करो। मैं अपने भीतर सब तरफ से खोजती हूं, वहां कोई घृणा नहीं है। अगर शैतान मेरे सामने आयेगा तो मैं घृणा कैसे करूंगी? आखिर घृणा करने के लिए घृणा मौजूद होनी चाहिए। नहीं तो घृणा आयेगी कहां से। जिस कुएं में पानी नहीं है और उसमें आप बाल्टियां डालेंगे तो पानी पायेंगे कहां से? पानी होगा तो आयेगा। उस राबिया ने कहा मेरे भीतर घृणा नहीं है, सिर्फ प्रेम है। परमात्मा हो या शैतान हो, दोनों मेरे सामने आकर खड़े

हो जायें तो मैं मजबूर हूं – मैं प्रेम ही करूंगी, दोनों को बराबर ही प्रेम कर सकूंगी। मेरे भीतर घृणा नहीं है। मैंने बहुत खोजा, वहां कोई घृणा नहीं है। लेकिन आप अपने जेब के भीतर खोजें तो आपको घृणा मिल जायगी। वह प्रेम के पीछे ही खड़ी है, वह प्रेम की छाया की भांति ही खड़ी है। जिससे आपकी मित्रता है उसी के प्रति आपके मन में शत्रुता का भाव भी खड़ा हुआ है। जिसको आप सम्मान दे रहे हैं उसका ही अपमान करने का मन भी आपके पीछे खड़ा हुआ है। जिसकी आप प्रशंसा कर रहे हैं उसकी निन्दा करने की वृत्ति भी आपके पीछे खड़ी हुई है। ये दोनों विरोधी वृत्तियां साथ हों तो चित्त सरल कैसे हो सकता है और जो चित्त सरल नहीं है वह कैसे सत्य को जान सकेगा। सरलता तो अनिवार्य है। सरलता तो परमात्मा को पाने की अनिवार्य शर्त है। यह जो हमारा चित्त जटिल है इसे समझ लेना जरूरी है। चित्त की जटिलता को उसके खण्ड खण्ड होने, उसके टुकड़े टुकड़े में बंटे होने को और हमारे व्यक्तित्व के अनेक अनेक विरोधी अंशों को समझ लेना जरूरी है। जो व्यक्ति अपने भीतर अखण्ड नहीं हो सकता वह समझले, उसकी कोई प्रार्थना, उसका कोई ध्यान, उसका कोई योग, उसकी कोई पूजा सार्थक नहीं है, सब व्यर्थ है। वह किसी मन्दिर में जाय, किसी मस्जिद में जाय और किसी भगवान को प्रणाम करे, उसका कोई अर्थ नहीं है। अखण्ड हुए बिना कोई अर्थ नहीं है। जब आप मन्दिर की मूर्ति के सामने सिर झुका रहे हैं तब भी आपके भीतर अश्रद्धा मौजूद है श्रद्धा के साथ। आदर के साथ ही अनादर मौजूद है, विश्वास के साथ ही संदेह मौजूद है।

मैं अपने गांव जाता हूं, तो वहां एक वृद्ध शिक्षक हैं, उनके यहां मैं हमेशा जाता था। एक बार मैं सात आठ दिन गांव में रूका तो उनके घर गया। सुबह उठकर ही उनके घर गया। दुसरे दिन उन्होंने खबर भेजी कि मैं उनके घर न आऊं। मैंने उनके लड़के से पूछा कि उन्होंने ऐसी खबर क्यों भेजी है। उसने कहा कि उन्होंने एक चिट्ठी दी है। उस चिट्ठी में लिखा था कि मेरे घर आते हो तो मुझे बहुत खुशी होती है, मेरे आनन्द का ठिकाना नहीं रहता है लेकिन मैं चाहता हूं कि मेरे घर मत आओ, क्योंकि कल मैं पूजा करने बैठा, तो तुम्हारी बातों का यह परिणाम हुआ कि मुझे यह शक होने लगा कि पता नहीं यह सब मूर्खता तो नहीं है, यह जो मैं कर रहा हूं। यह सब आरती आदि बालपन तो नहीं है? और जो पत्थर की मूर्ति सामने रखी है, सच में वह पत्थर ही तो नहीं है? और मैं तीस चालीस वर्षों से पूजा कर रहा हूं वह मेरे मन में संदेह आ

गया और मैं डर गया। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरे घर दोबारा मत आना। मैंने उनको पत्र लिखा कि मैं अब आऊं या न आऊं, जो होना था वह हो गया, और मैं आपसे यह भी प्रार्थना करता हूं कि संदेह मैंने पैदा नहीं किया है वह तो निरन्तर चालीस वर्ष आपके पूजा के पीछे खड़ा ही रहा है। श्रद्धा करने से कहीं संदेह नष्ट हुआ है? श्रद्धा ऊपर से थोप लेंगे, संदेह भीतर छाया रहेगा। प्रेम करने से कहीं घृणा नष्ट हुई है? प्रेम ऊपर से दिखायी पडेगा फिर घृणा मौजूद रहेगी। आदर देने से कहीं अनादर का भाव नष्ट हुआ है? आदर ऊपर से थोप लेंगे, भीतर अनादर बना रहेगा और आप जटिल होते चले जायेगें। इसलिए मैं उस श्रद्धा को कहता हूं कि छोड़ दें, जिसके पीछे एक संदेह मौजूद है। जिस दिन संदेह विलीन हो जाता है और जो शेष रह जाती है उसका नाम श्रद्धा है। इसालए उस प्रेम को व्यर्थ कहता हूं जिसके पीछे घृणा छिपी है, जिस दिन घृणा विसर्जित हो जाती है तब जो शेष रह जाता है उसका नाम प्रेम है। इसलिए इस मित्रता का कोई अर्थ नहीं है जिसके भीतर शत्रु होने की सम्भावना है। जिस दिन शत्रुता का भाव गिर जाता है और जो शेष रह जाता है, वह मैत्री की भावना है। इसलिए उस सुख का कोई मूल्य नहीं है जिसके पीछे दुख बैठा हुआ है। जिस दिन दुख विलीन हो जाता है, तब जो शेष रहजाता है वह आनन्द है। लेकिन हम तो निरन्तर विरोध से भरे हैं। जो विरोध से भरा है, उसका चित्त जटिल (Complex) होगा, जो विरोध से भरा है उसका चित निरन्तर जटिलता में और द्वन्द्व में होगा। और थोड़ा समझ लेने की बात है कि जो चित्त निरन्तर द्वन्द्व करता है, उस चित्त की ज्ञान की क्षमता क्षीण होती जाती है। क्योंकि जो निरन्तर द्वन्द्व में लगा है उसकी संचेतना (Consiousness) उसका बोध निरन्तर धीमा और फीका होता जाता है। जो निरन्तर लड़ाई लड़ रहा है वह दिन रात लड़ते लड़ते धीरे धीरे खोखला हो जाता है। उसकी संवेदनशीलता (Sensitivity) कम हो जाती है। जो निरन्तर द्वन्द्व में है वह धीरे धीरे मन्द बुद्धि होता चला जाता है, उसका विवेक विकसित तो नहीं होता, क्षीण होता है। यही वजह है कि बच्चे से बूढ़े का मस्तिक वस्तुतः ज्यादा तीव्र और विकसित होना चाहिए लेकिन हम देखते हैं कि वह क्रमशः क्षीण होता जाता है। शरीर वृद्ध होने का कोई कारण नहीं है अगर मन द्वन्द्व (Conflict) में न हो, मन अगर जटिल न हो, खण्ड खण्ड बटा हुआ न हो, खुद के भीतर विरोध से भरा हुआ न हो। तो मन के बूढ़े होने का कोई कारण नहीं है।

मन बूढ़ा हो जाता है निरन्तर द्वन्द्व के कारण, निरन्तर लड़त रहने के कारण, निरन्तर विरोध में होने के कारण। अपने ही भीतर जो विरोध से भरा है, स्वाभाविक है धीरे धीरे उसकी क्षमता, उसकी संवेदनशीलता कम होती जाय। हम निरन्तर मन में ही वृद्ध होते जाते हैं। यह जो मन का संघर्ष है, यह जो मन का खण्ड खण्ड होना है, हमारे ही कारण है। हम ही इसे खण्ड खण्ड में बांट देते हैं। अपने ही अज्ञान में हम अपने को तोड़ लेते हैं। कैसे हम तोड़ लेते हैं उसको थोड़ा समझें तो यह भी समझ में आ जायगा कि सरलता क्या है। मन की सरलता कैसे पैदा होती है, इसके पहले कि उसके विचार में जाऊं, मैं आपको यह कह दूं।

साधारणतया जो कहा जाता है कि फलां आदमी बहुत सरल है, या साधारणतया जो हमसे कहा जाता है कि सरल होना चाहिए, उस तरह की सरलता को नहीं कह रहा हूं। साधारणतया हमसे कहा जाता है कि हमें सरल होना चाहिए, लेकिन इस सरलता को नहीं कह रहा हूं क्योंकि इस तरह की जो सरलता है उसके पीछे जटिलता मौजूद रहती है। एक आदमी सरल होने का ढोंग कर सकता है, एक आदमी सरल होने का ढोंग अनेक रूपों से कर सकता है। वह बहुत अच्छे कपड़े न पहने, वह मोटी खादी के सामान्य सीधे सादे कपड़े पहन ले। हम कहेंगे, बहुत सरल आदमी है, या वह और भी ज्यादा करे और लंगोटी लगा ले। हम कहेगें बहुत ही सरल आदमी है और भी सरल, वह नंगा हो जाय तो हम कहेंगे कि कितना सरल आदमी है। यह सरलता नहीं है। या एक आदमी दो बार खाना नहीं खाये, एक बार खाना खाने लग जाय, हम कहेंगे कि कैसा सरल आदमी है। एक ही बार खाना खाता है या एक आदमी मांस न खाये और शाकाहार करने लगे, हम कहेंगे कि कैसा सरल आदमी है। एक आदमी धूम्रपान न करे, शराब न पिये जुआ न खेले, हम कहेंगे कैसा सरल आदमी है। यह कोई सरलता के कारण नहीं है, बल्कि ऐसे आदमी बहुत जटिल होते हैं, क्योंकि ऐसे आदमी ऊपर से सरलता को ओढ़ लेते हैं, भीतर की जटिलता तो नष्ट नहीं होती है, वह तो वहां मौजूद रहती है।

यह जो ऊपर से सरलता का ढोंग है इसका कोई अर्थ नहीं है, यह कोई सरलता नहीं है। सरलता बड़ी दूसरी चीज है। यह वैसी ही है जैसे कोई कागज के फूल घर में लगा ले। कागज के फूलों और असली फूलों में बड़ा फर्क है। सरलता लायी नहीं जाती, ऊपर से थोपी नहीं जाती, भीतर चित्त अखण्ड हो जाय तो बाहर सरलता अपने आप आनी शुरू हो जाती है और तब आदमी

क्या पहनता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है और आदमी क्या खाता है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कैसे उठता बैठता है इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। यह सब अपने आप सरल हो जाता है। भीतर से अखण्ड है तो बाहर जीवन में सरलता अपने आप प्रवेश पाने लगती है। भीतर चित्त अखण्ड हो तो बाहर कोई कितनी ही सरलता को लाद ले। लादी हुई सरलता कोई सरलता नहीं है, उसका कोई मूल्य नहीं है, ऊपर थोपी गयी है। ऊपर से थोपी हुई सरलता का कोई मूल्य नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी सरलता केवल अपने आप जन्म नहीं होती है, सहज उत्पन्न नहीं होती। किसी ने कहा है, साधु सहज समाधि भली वह जो सहज उत्पन्न हो, सहज विकसित हो वही भली है, जो असहज हो, थोपा जाय, अभ्यास किया जाय, वह व्यर्थ है।

मैं एक गांव में गया था। एक साधु मेरे मित्र थे। वे संन्यास की तैयारी में लगे थे। जब मैं उनके झोंपड़े के पास गया, मैंने देखा वे अन्दर नग्न टहल रहे हैं और खिड़की में से दिखायी पड़ रहे थे। मैं द्वार पर गया और द्वार पर दस्तक दी। जब उन्होंने द्वार खोला तो वे कपड़े लपेटे हुए थे। मैंने उनसे पूछा कि मैंने खिड़की से आपको देखा तो आप नग्न थे, अब आप कपड़े क्यों लपेटे हुए हैं। वे बोले, मैं नग्न रहने का अभ्यास कर रहा हूं। अकेले में अभ्यास करूंगा फिर कुछ मित्रों में भी, फिर थोड़ा बाहर निकलूंगा घर से, फिर गांव में, फिर शहर में। इस भांति धीरे धीरे अभ्यास हो जायगा। मैंने उनसे कहा, आप किसी सरकस में भरती हो जायं, आपको सन्यास लेने की कोई जरूरत नहीं, आप किसी सरकस में भरती हो जाये। यह इसलिए आपसे कहता हूं कि अभ्यास से आयी हुई नग्नता वह नग्नता नहीं है जो महावीर को आयी है। वह नग्नता अभ्यास (Practice) से नहीं निर्दोषता (Innocence) से आयी है। चित्त इतना सरल हो गया कि वस्त्र अनावश्यक हो गये। छूट गये। वे वस्त्र छोड़े नहीं गये वे वस्त्र छूट गये। ऐसे जो नग्नता आजाय वह तो अर्थपूर्ण है और वस्त्र छोड़ के अभ्यास करके जो नग्नता आजाय तो वह तो कोई सरकस में भी कर सकता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। एक आदमी इतना प्रभु के स्मरण से भर जाय कि उसे भोजन का ख्याल न आये और दिन बीत जाय, उपवास हो जाय, यह तो समझ में आता है, और एक आदमी चेष्टा करके दिन भर अभ्यास करके भूखा रह जाय यह मेरी समझ में नहीं आता है। उपवास का अर्थ ही है कि परमात्मा के निकट होना, उसके पास रहना। उसके पास जो उसका चित्त है उसके कारण अगर भोजन भूल जाय तो समझ में आता है

अन्यथा फिर साधा हुआ उपवास बिल्कुल व्यर्थ हो जाता है, उसका कोई मूल्य नहीं। साधा हुआ सभी व्यर्थ हो जाता है। जो आजाये उसकी सार्थकता है। साधे हुए की सार्थकता नहीं है। जोवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह आता है, साधा नहीं जाता है। अगर मैं आपके प्रति प्रेम को साध लूं तो वह प्रेम असत्य हो गया। साधा हुआ प्रेम कैसे सत्य होगा। साधा हुआ प्रेम तो अभिनय होगा, पाखण्ड होगा। आया हुआ प्रेम। मेरे भीतर से प्रेम, फूटने लगे, उसके अवरुद्ध द्वार खुल जाय और मेरे भीतर से प्रेम की धारा बहने लगे तो वह तो समझ में आता है। और मैं चेष्टा करूं, प्रयास करूं और आपको प्रेम करूं तो उस प्रेम का क्या मूल्य होगा। वैसे ही सरलता का भी कोई मूल्य नहीं है। वह साध ली गयी है लेकिन हम चारों तरफ सरलता को साधते हुए देखते हैं। जिसको हम साधु कहते हैं वह सरलता साधे हुए है। सारी चेष्टा है उसकी, एक एक बात के लिए नियम और विधि और विधान है। कब उठना, है, कब सोना है, क्या खाना है, क्या पहनना, है, रत्ती-रत्ती उसका हिसाब है, उसकी बड़ी आयोजना है। बेहतर था कि वह कहीं इंजीनियर होता। बेहतर था कि वह कहीं किसी व्यवस्था में व्यवस्थापक होता, कहीं मैनेजर होता। बेहतर होता वह कहीं मशीनें चलाता, उसका मस्तिष्क मशीनों को चलाने में बड़ा योग्य सिद्ध होता। लेकिन वह साधु है। साधु का जीवन साधा हुआ नहीं, सहज होता है। उसके भीतर से जो फलित हो रहा है वह सहज फलित हो रहा है।

जापान में एक बादशाह हुआ। उसने लोगों से पूछा कि मैं किसी साधु के दर्शन करना चाहता हूं। उसके वजीरों ने कहा, साधु के दर्शन! गांव गांव सड़क सड़क साधु हैं, कहीं भी जायें, दर्शन कर लें।

जापान में कहते हैं भिक्षुक बहुत हैं। बौद्ध मठों में भिक्षुकों की संख्या बहुत है। कम्बोडिया आदि में कोई दो तीन करोड़ की तो आबादी है, कोई बीस लाख भिक्षुक वैसे ही जापान में है। वैसे ही लंका में हैं। बादशाह के वजीरों ने कहा कि भिक्षुक और साधु की क्या कमी है। अभी कहें जितना, उतनी भीड़ लगा दें। उसने कहा लेकिन नहीं मैं साधु के दर्शन करना चाहता हूं। उन्होंने पूछा लेकिन साधु से क्या अर्थ हैं आपका———सड़क पर जायं, साधु ही साधु हैं। उसने कहा, अगर ये ही साधु होते तो मैं तुमसे साधु के दर्शन के लिए नहीं कहता। ये सब मुझे अभिनय करते हुए लोग मालूम पड़ते हैं। एक खास ढंग के कपड़े पहन लेना एक खास ढंग का सिर घुटा देना और एक खास रंग का झोला लटका लेने से कोई कैसे साधु हो सकता है। यह सब मुझे बड़े अप्रौढ़ बड़े बचकाने लोग मालूम

पड़ते हैं। उनके भीतर अभिनय की वृत्ति है। ये सारे के सारे अभिनेता तो हो सकते हैं। लेकिन साधु कैसे हो सकते हैं। आप देखें जरा साधुओं को, कोई एक विशेष ढंग का टीका लगाये हुए है, कोई एक विशेष ढंग के कपड़े पहने हुए है, कोई कुछ किये हुए है और कोई कुछ और फिर उनके पीछे चलने वाले भी ठीक वैसा ही किये हुए हैं। यह सब कितना बचकाना (childish) कितना अप्रौढ़ (immature)मालूम देता है। कोई विचारशील, कोई विवेकशील ऐसा अभिनय कर सकता है?

गांधी के पास एक संन्यासी ने आकर कहा कि मैं कुछ सेवा करना चाहता हूं। गांधी ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि इसके पहले कि तुम सेवा करो, यह गैरिक वस्त्र छोड़ दो। उसने कहा, क्यों, इससे क्या बाधा है? उन्होंने कहा कि यह वस्त्र तुम पहने हो यह इसी बात के सबूत हैं कि तुम लोगों से चाहते हो कि वे तुम्हें सन्यासी समझे, अन्यथा और कोई कारण नही वस्त्र का। तुम संन्यासी हो तो किसी भी वस्त्र में हो सकते हो, लेकिन लोग तुम्हें किसी भी वस्त्र में सन्यासी नहीं समझेंगे। तुम चाहते हो कि लोग समझें कि तुम सन्यासी हो। और जो चाहता है कि लोग समझें कि मैं संन्यासी हूं वह आदमी संन्यासी नहीं है। लोगों के चाहने से क्या सम्बन्ध है। उस राजा ने कहा कि मैं साधु से मिलना चाहता हूं। वजीरों ने बहुत खोज की कि कोई साधु हो। बड़ी मुश्किल से पता चला कि गांव के बाहर एक झोंपड़ी में एक आदमी रहता है। कुछ लोग कहते हैं कि वह साधु है। राजा वहां गया। वह सुबह सुबह वहां पहुंचा। उसने सोचा कि साधु ब्राह्ममुहूर्त में उठा होगा तो वह गया। सुबह कोई सात साढ़े सात बज रहा था। सूरज भी उग आया था और साधु सोया हुआ था। भगवान बुद्ध की मूर्ति रखी हुई थी, उससे वह पैर टिकाये हुए था। उस राजा ने कहा कि यह कैसा साधु है? भगवान की मूर्ति से पैर टिकाये हुए है और इतनी देर तक सोया हुआ। लेकिन राजा को जो लोग ले गये थे उन्होंने कहा कि इतनी जल्दी निर्णय न लें, क्योंकि साधु को पहचानना इतना आसान नहीं। इतनी जल्दी निर्णय लेने से ही तो असाधु साधु बने हुए दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि कोई भी चार बजे उठ सकता है, कोई बड़ी कठिन बात है? और कोई भी भगवान को हाथ जोड़े मिल सकता है, कोई कठिन बात है? जरा थोड़ा निर्णय लेने में जल्दी न करें। यह आदमी थोड़ा कुछ है। भगवान पर पैर टिकाये हुए है, यह कोई सामान्य आदमी नहीं है। सिर्फ साधु ही टेक सकता है भगवान पर पैर और कोई नहीं टेक सकता है। थोड़ा रुकें, जल्दी निर्णय न लें। वह साधु

कोई ८ बजे उठा होगा। राजा ने उसे उठते ही पूछा कि तुम इतने देर तक सोये हुए थे? साधु को ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाना चाहिए। उस साधु ने कहा कि मैं तो ब्राह्ममुहूर्त में ही उठता हूं और जब उठता हूं तभी ब्राह्ममुहूर्त मानता हूं। जब परमात्मा उठा देता है, उठ आता हूं, जब परमात्मा सुला देता है, सो जाता हूं। न अपनी तरफ से सोता हूं न अपनी तरफ से उठता हूं। अपने को छोड़ ही दिया उसी दिन से जिस दिन साधु हुआ। अपने को छोड़ दिया उसी दिन। अब जो होता है—धूप में बैठता हूं, धूप तेज होने लगती है तो भीतर परमात्मा कहता है, छाया में चलो तो छाया में आ जाता हूं और जब छाया में ठण्ड लगती है और परमात्मा कहता है कि धूप में चलो धूप में चला जाता हूं। अपने को मैंने छोड़ दिया है। पर अब मैं सिर्फ जो रहा हूं और मैं नहीं हूं। जब नींद खुलती है तो उठ आता हूं, जब भूख लगती है तो खाना खाने चला आता हूं। राजा ने कहा, तुम्हारा कोई विधि विधान नहीं है। कोई व्यवस्था नहीं है। उसने कहा कोई विधि विधान नहीं है। जिसने परमात्मा के हाथ में अपने को छोड़ा उसका कोई विधि विधान नहीं होता है। सब विधि विधान अहंकार से पैदा होते हैं। सारी विधि विधान की व्यवस्था अहंकार से पैदा होती है। हम कुछ थोपना चाहते हैं जीवन पर और जो मनुष्य जीवन पर कुछ थोपना चाहता है, जो मनुष्य जीवन से कोई विशेष अपेक्षा रखता है कि वह ऐसा हो, ऐसा न हो। जो कुछ निषेध करता है और कुछ स्वीकार करता है वह मनुष्य सरल नहीं हो सकता है। सरलता साधु की अनिवार्य शर्त है। सरलता जीवन में सत्य को पाने की अनिवार्य शर्त है।

उस साधु ने कहा कि हवा पानी की तरह जो हो जाता है, जैसे एक सूखा पत्ता उड़ता है, हवा जहां ले जाय वहां चला जाता है। हवा जहां गिरा दे गिर जाता है, फिर हवा उठा दे तो उठ जाता है। सूखे पत्ते की तरह जो हो जाय वैसा व्यक्ति केवल सरल हो सकता है, बाकी तो सारे लोग जटिल हैं। सागर पर तैरते हुए लकड़ी के टुकड़े की भांति जो हो जाय कि लहरें जहां ले जायें चला जाय और लहरें जहां छोड़ दें छूट जाय। जिसकी अपनी कोई विधि, निषेध की कोई इच्छा नहीं है, जिसका अपना कोई आरोपण नहीं है वही केवल सरल हो सकता है। हम कैसे सरल होंगे। जिनके ऊपर कोई २४ घण्टे विधि निषेध हैं वह चौबीस घण्टे अपने को विशेष भांति से बनाने में लगे हुए हैं वह कैसे सरल होंगे। जो आदमी भी अपने को बनाने की चेष्टा में लगा है वह सरल नहीं हो सकता है। जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मैं परमात्मा को

पाऊंगा, जो आदमी इस कोशिश में लगा हुआ है कि मैं साधु हो जाऊंगा अथवा जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मुझे तो हो जाना, होना है, जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मुझे अहिंसक होना है, मुझे सत्यवादी होना है, मुझे अक्रोधी होना है। जो इस कोशिश में लगा है वह आदमी सरल कैसे होगा। वह आदमी सरल नहीं हो सकता है। जो आदमी जीवन में किसी आदर्श के प्रति अपने को समर्पित करता है वह कभी सरल नहीं हो सकता है और हम सारे लोग किसी न किसी आदर्श के प्रति समर्पित हैं।

महावीर को हुए ढाई हजार वर्ष हुई। क्राइस्ट को हुए दो हजार वर्ष हुए, बुद्ध को हुए ढाई हजार वर्ष हुए, राम को हुए और भी ज्यादा हो गये। उनके बाद हमने आदर्श पकड़ लिए हैं। बुद्ध के बाद ढाई हजार वर्ष से उनके पीछे चलने वाला बुद्ध होने की कोशिश में लगा है। कोई दूसरा आदमी बुद्ध हुआ है, ढाई हजार वर्षों में? नहीं हुआ। कोई दूसरा आदमी महावीर हुआ ढाई हजार वर्षों में? नहीं हुआ। कोई दूसरा आदमी क्राइस्ट हुआ ? दो हजार वर्षों का अनुभव इन्कार करता है कि नहीं हुआ। फिर भी लाखों लोग क्राइस्ट होने की चेष्टा में लगे हैं, लाखों लोग बुद्ध होने का, लाखों लोग महावीर होने की, जरूर इसमें कोई बुनियादी गलती है। जो आदमी किसी दूसरे आदमी के जैसा होने की चेष्टा में लगता है वह जटिल हो जायगा। स्वभावतः वह जटिल हो जायगा। वह अपने को इन्कार करने लगेगा और दूसरों को अपने पर थोपने लगेगा। वह अपनी वास्तविकता से निषेध करने लगेगा और दूसरों की आदर्शता को ओढ़ने लगेगा। वह आदमी कठिन हो जायगा, जटिल हो जायगा। उसका चित्त खण्ड खण्ड हो जायगा, वह टूट जायगा अपने भीतर। उसके भीतर द्वन्द्व उत्पन्न हो जायगा और बड़ी मुश्किल तो यह है कि महावीर होने के लिए सरल होना जरूरी है। बुद्ध होने के लिए सरल होना जरूरी है, कृष्ण होने के लिए सरल होना जरूरी है और क्राइस्ट होने के लिए सरल होना जरूरी है। जो उनका अनुगमन करते हैं वे अनुगमन करने के कारण ही जटिल हो जाते हैं। यह स्थिति आपको दीखनी चाहिए। कोई किसी का अनुगमन करके सरल नहीं हो सकता है। अनुगमन का अर्थ ही हुआ कि मैंने दूसरे मनुष्य जैसे होने की चेष्टा शुरू कर दी। बिना उस मनुष्य को समझे हुए जो मैं था, जो मैं हूं, मैं जो हूं उसे समझे बिना मैंने दूसरा मनुष्य होने की चेष्टा शुरू कर दी। मैं जो हूं वह रहूंगा और दूसरे मनुष्य का आवरण बनावट, पाखण्ड अपने ऊपर थोप लूंगा। इसलिए धार्मिक मुल्क अत्यन्त पाखण्डग्रस्त हो जाते हैं। हमारा मुल्क है,

इससे ज्यादा पाखण्डी मुल्क जमीन पर खोजना कठिन है। इससे ज्यादा जटिल मुल्क, जटिल कौम, जटिल जाति खोजना बिल्कुल मुश्किल है। जितना पाखण्ड हममें जमा और गहरा है उतना जमीन में किसी कौम में नहीं हो सकता है और कारण कुल यह है कि हम सब अनुकरण, आदर्श, हम कुछ होने के पागलपन में लगे हैं उस मनुष्य को समझे बिना जो हम हैं। जबकि जीवन की कोई भी वास्तविक क्रान्ति जो हम हैं उसे समझने से शुरू हो सकती है। जो मैं हूं उसे समझने से वस्तुतः शुरू होती है।

एक आदमी क्रोधी है, एक आदमी लोभी है, एक आदमी दम्भी है। एक दम्भी आदमी कोशिश में लग जाता है कि मैं विनीत हो जाऊं, क्या होगा? एक अहंकारी मनुष्य है। शिक्षक, संस्कारी और समझाने वाले लोग उससे कहते हैं कि अहंकार छोड़ दो तो तुम्हें बहुत शान्ति मिलेगी। वह अहंकारी मनुष्य अहंकार को छोड़ने में लगेगा। क्या करेगा? अहंकार कहीं छोड़ा जाता है? अहंकार कहीं छोड़ा जा सकता है, कौन छोड़ेगा अहंकार? जो छोड़ने में लगा है अहंकार ही तो है। इसलिए जब छूटने का उसे लगेगा तो वह कहने लगेगा कि मैंने अहंकार छोड़ दिया, मैं विनीत हो गया, मैं विनम्र हो गया हूं। यदि उसके पास कोई अहंता नहीं है तो यह सब क्या है? यह सब अहंता का हिस्सा है। कोई अहंकारी अहंकार को कैसे छोड़ सकेगा? छोड़ने से और परिपुष्ट हो जायगा और सक्षम हो जायगा इसलिए सन्यासी के बराबर सक्षम अहंकार गृहस्थ का नहीं होता है, न हो सकता है। गृहस्थ तो एक दूसरे से मिल जाते हैं, सन्यासी एक दूसरे से मिलते नहीं हैं। संन्यासियों को कहिये, एक दूसरे से मिलें तो नहीं मिल सकते।

एक बड़े साधु से मैंने कहा कि फलां साधु से आप मिलें। वह कहे, जरा मुश्किल है, क्यों मुश्किल है, कौन पहले नमस्कार करेगा, यही मुश्किल है, अगर वे साधु मिलें। कौन कहां बैठेगा यही मुश्किल है, कौन नीचे बैठेगा, कौन ऊपर बैठेगा।

एक जलसे में मैं था। वहां तीस चालीस साधु अलग अलग तरह के आमंत्रित थे। उस समारोहके करने वालों की यही इच्छा थी कि सारे लोग एक ही मंच पर बैठें लेकिन वे नहीं बैठ सके। क्योंकि कोई शंकराचार्य था, उनको सिंहासन चाहिए, उसपर ही बैठेंगे और जब शंकराचार्य सिंहासन पर बैठेंगे तो दूसरा साधु उनके नीचे बैठने को राजी होगा? वह कहेगा कि मैं भी सिंहासन पर बैठूंगा। फिर यह भी डर है कि सिंहासन किसका ऊंचा नीचा होगा। क्या

सोचते हैं आप, ये पागल हैं या साधु हैं? ये विनम्र हैं या अहंकार की अंतिम चरम सीमा पर हैं? यह अहंता का सूक्षतम रूप है इसलिए दुनिया में साधु लड़ते हैं और लड़ाते हैं, क्योंकि अहंकार जहां भी हो वहीं द्वन्द्व, संघर्ष और लड़ाई खड़ी कर देता है। यह अहंता है और अहंकार कभी अहंता को छोड़ ही नहीं सकता है। जब वह छोड़ने में लगता है तब भी वह अहंकारी है जो सोच रहा है कि मैं विनम्र हो जाऊं। वह क्या करेगा? वह विनम्र होने का ढोंग करेगा। जब आप मिलेंगे तो वह सिर झुका के कहेगा कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं और जब वह कह रहा है कि मैं कुछ भी नहीं हूं तब वह कहेगा कि मैं "कुछ हूं"। यह केवल वही आदमी कहता है कि मैं कुछ नहीं हूं जो जानता है कि मैं कुछ हूं। अन्यथा नहीं कह सकेगा। लोभी कैसे छोड़ेगा लोभ को? वह लोभ को भी छोड़ेगा तो लोभ के कारण ही छोड़ेगा।

मैं एक जगह था और एक साधु समझा रहा था दूसरे लोगों को कि लोभ छोड़ दो तुम शान्त हो जाओगे। लोभ छोड़ दो तो पुण्य मिलेगा, लोभ छोड़ दो तो मोक्ष मिलेगा। मैंने उन साधु से कहा कि अगर इनमें से कोई बहुत लोभी होगा तो ही आपकी बात को मान पायेगा क्योंकि जिसे मोक्ष पाने का लोभ होगा वह सोचेगा लोभ छोड़ दें। शान्त होने का जिसे लोभ होगा वह सोचेगा लोभ छोड़ दें। यह सब लोभ के ही हिस्से हैं, ये सब लोभ (greed) का ही विस्तार (extension) हैं, लोभी कभी लोभ को कैसे छोड़ सकता है। असल में कोई बुराई कभी नहीं छोड़ी जाती—वैसे जैसे अन्धकार हो तो अंधकार को हटाया नहीं जा सकता। इस भवन में अंधकार भरा हो, हम उसे झटके देकर नहीं हटा सकते। अगर कोई अंधकार को हटाने में लगेगा तो हम क्या कहेंगे उसको? कहेंगे, विक्षिप्त हो गया है, इसका मस्तिष्क ठीक नहीं है।

अंधकार कहीं हटाया जाता है? हां, प्रकाश जलाया जाता है। प्रकाश जल जाय तो अंधकार अपने आप विलीन हो जाता है और वह नहीं पाया जाता है। वैसे ही अहंकार नहीं छूटता। सरलता उत्पन्न होती है तो अहंकार नहीं पाया जाता है। लोभ नहीं छूटता। शान्ति उत्पन्न होती है तो लोभ नहीं पाया जाता है।

जीवन में बुराई नहीं छोड़ी जाती। जो सद् है उसका जन्म, उसे जगाया जाता है, जो आलोक है उसे जगाया जाता है।, अंधकार अपने से छूट जाता है, लेकिन हम अंधकार को छोड़ने में लगेंगे तो जटिल हो जायेंगे। हम सारे लोग अन्धकार को छोड़ने में लगे हैं। मुझे लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि हमने अपनी हिंसा

छोड़ दी है। मैं उनको कहता हूं कि हिन्सा कैसे छोडी जा सकती है ? हां, प्रेम जगाया जा सकता हिन्सा नहीं छोड़ी जा सकती है। लोग कहते हैं, हमें असत्य छोड़ना है। सत्य जगाया जा सकता है, असत्य नहीं छोड़ा जा सकता है। और जब ये छोड़ने की भाषा में पड़ जाते हैं तभी जटिलता शुरू हो जाती है, (conflict) द्वन्द्व शुरू हो जाता है। और हमारे चित्त इसीलिए बहुत ज्यादा द्वन्द्व से भरे हैं। हम कुछ छोड़ना चाहते हैं, जबकि छोड़ना जीवन का नियम नहीं है, पाना जीवन का नियम है, । कुछ पा लिया जाय तो निम्न छूट जाता है। श्रेष्ठ पा लिया जाये, निम्न विलीन हो जाता है, श्रेष्ठ आजाये तो निम्न जगह खाली कर देता है। प्रकाश आजाये तो अंधकार स्थान छोड़ देता है लेकिन अंधकार अपने आप स्थान नहीं छोड़ सकता है। प्रकाश का आगमन प्राथमिक है, अंधकार का जाना द्वितीय है। सद का होना प्राथमिक है, असद का जाना द्वितीय है। श्रेष्ठ का आना प्राथमिक है, अश्रेष्ठ का जाना द्वितीय है। और वह जो आगमन है, वह जो वास्तविक सरलता का आगमन है, जिससे जटिलता जायेगी, वह आरोपित नहीं होता है, उसे भीतर से जगाना होता है। भीतर से जगाने का नियम क्या होगा, नियम यह होगा कि सबसे पहले हम सब भांति के आदर्शों से अपने को मुक्त कर लें। आदर्श जटिल कर रहे हैं।

आप सबसे पहले अपने को जानने में लगें—बजाय इसके कि आप अपने बनाने में लग जायं। हम पूछते हैं कि हमें कैसा होना चाहिए? मैं आपसे कहता हूं कि यह व्यर्थ है। आप जानें कि आप कैसे हैं। वह वैज्ञानिक है कि आप जाने कि आप क्या हैं। अगर आप अपनी वास्तविकता को पूरी तरह जान लें तो उस ज्ञान से ही क्रान्ति शुरू हो जाती है। अगर कोई मनुष्य अपने क्रोध को पूरा जान ले तो क्रोध विलीन होना शुरू हो जाता है। क्रोध को विलीन करने के लिए और कुछ करना जरूरी नहीं है, क्रोध को जान लेना ही जरूरी है। लेकिन आपने कभी क्रोध नहीं जाना। आप कहेंगे कि हमने बहुत बार क्रोध किया है, मैं आपको कहता हूं कि मैं मुल्क में घूमा हूं और मैं ऐसे आदमी की तलाश में हूं कि जिसने क्रोध को जाना हो। आपने क्रोध कभी नहीं जाना। जब आप क्रोध करते हैं तब आप मौजूद नहीं होते। आप समझते हैं। असल में आप बेहोश होते हैं। कभी कोई आदमी मौजूद होकर क्रोध कर सकता है। मौजूद होकर क्रोध किया नहीं जा सकता। अगर आप मौजूद हों तो क्रोध असम्भव हो जायगा। अगर आपकी उपस्थिती (presence) पूरी हो उस समय। चित्त की वृत्ति के समय अगर आप सजग हों तो क्रोध असम्भव हो जायगा। क्रोध

नहीं किया जा सकता है। जब भी हम सजग हों तभी जो बुरा है वह असम्भव हो जाता है। बुरों के लिए असजग होना, मूर्च्छित होना जरूरी है इसलिए जिसे बुरा काम करना है वह अगर नशा कर ले तो बुरा काम और भी आसान हो जाता है, क्योंकि नशे में सजगता और भी क्षीण हो जाती है। सारे धर्मों ने नशे का विरोध किया है केवल एक ही बात से, अन्यथा नशे में कोई खराबी नहीं है। एक आदमी शराब पी रहा है, इसमें क्या खराबी है। शराब में कोई खराबी नहीं है, खराबी यह है कि शराब की स्थिति में उसके होश की जो स्थिति है वह विलीन हो जायगी, वह और भी मूर्च्छित होगा और मूर्च्छा में सब पाप होते हैं। आप जब क्रोध करते हैं तब आप मूर्च्छित हैं। जब आप काम से पीड़ित हैं तब आप मूर्छित हैं, आप होश में नहीं हैं, आप अपने में नहीं हैं। आपको कोई चीज खींच रही है और आपको बिल्कुल होश नहीं है कि आप कहां जा रहे हैं। क्रोध में आदमी को देखें, वासनाग्रस्त आदमी को देखें। उसकी आंखों को, उसके भाव को देखें, उसके शरीर को देखें, आप पायेंगे वह मूर्छित है, वह बेहोश है। इसीलिए जब आप क्रोध में होते हैं तब न केवल मन के तल पर आप मूर्छित होते हैं बल्कि शरीर के तल पर भी। वैज्ञानिक कहते हैं शरीर की ग्रन्थियां जहर छोड़ देती हैं और जहर के प्रभाव से आप करीब करीब शराब की हालत में आ जाते हैं। शरीर के और मन के दोनों तल पर आप बेहोश हो जाते हैं।

बुद्ध का एक शिष्य था। वह नया नया दीक्षित हुआ था। उसने संन्यास ले लिया था। बुद्ध को उसने कहा : मैं आज कहां भिक्षा मांगने जाऊं। उन्होंने कहा, मेरी एक श्राविका है, वहां चले जाना। वह वहां गया। वह जब भोजन करने बैठा तो बहुत हैरान हुआ। रास्ते में इसी भोजन का उसे ख्याल आया था। यह भोजन उसे प्रिय था। उसने सोचा था कि कौन मुझे देगा। आज कौन मेरे प्रिय भोजन को देगा। वह कल तक राजकुमार था और जो उसे पसन्द था वह खाता था। लेकिन उस श्राविका के घर वही भोजन देखकर वह बहुत हैरान हो गया। सोचा, संयोग की बात है, वही आज बना होगा। जब वह भोजन कर रहा था, उसे अचानक ख्याल आया कि भोजन के बाद तो मैं विश्राम करता था रोज, लेकिन आज तो मैं भिखारी हूं। भोजन के बाद वापस जाना होगा, दो तीन, मीलों का फासला, फिर धूप में तय करना है। वह श्राविका उसको पंखा झलती थी। उसने कहा, "भन्ते अगर भोजन के बाद दो क्षण विश्राम कर लेंगे तो मुझपर बड़ा अनुग्रह होगा।" भिक्षुक फिर थोड़ा हैरान हुआ

कि क्या मेरी बात किसी भांति पहचानी जाती है। फिर उसने कहा कि संयोग की ही बात होगी कि मैंने भी सोचा और उसने भी उसी वक्त पूछ लिया। चटाई डाल दी गयी, वह विश्राम करने लेटा ही था कि उसे ख्याल आया कि आज न तो अपनी कोई शैया है, न अपना कोई साया है, अपने पास कुछ भी नहीं। वह श्राविका जाती थी, वह लौटकर रुक गयी। उसने कहा, भन्ते शैया किसी की भी नहीं है, साया किसी का भी नहीं है। चिन्ता न करें।

अब संयोग मान लेना कठिन था। वह उठकर बैठ गया। उसने कहा मैं बड़ा हैरान हूं। क्या मेरे भाव पढ़ लिए जाते हैं? वह श्राविका हंसने लगी। उसने कहा बहुत दिन ध्यान का प्रयोग करने से चित शान्त हो गया। दूसरों के भाव भी थोड़ा बहुत अनुभव में आजाते हैं। वह एकदम उठकर खड़ा हो गया। वह एकदम थक कर घबरा गया और कांपने लगा। श्राविका ने कहा, आप घबराते क्यों हैं, क्या हो गया? विश्राम कीजिये, अभी तो आप लेटे थे। उसने कहा, मुझे जाने दें। आज्ञा दें। उसने आंखें नीचे झुका लीं और वह चोरों की तरह वहां से भाग गया। श्राविका ने कहा कि क्या बात है, क्यों परेशान हैं। फिर उसने लौटकर भी नहीं देखा। उसने बुद्ध को जाकर कहा, उसद्वार पर अब कभी न जाऊंगा। उन्होंने पूछा, क्या हो गया, भोजन ठीक नहीं था? सम्मान नहीं मिला? कोई भूल चूक हुई? उसने कहा कि भोजन भी मेरे लिए जो प्रीतिकर है वही था, सम्मान भी बहुत मिला, प्रेम और आदर भी था, लेकिन वहां नहीं जाऊंगा। कृपा कर वहां जाने की आज्ञा न दें।

बुद्ध ने कहा, इतने घबराये क्यों हो, इतने परेशान क्यों हो। उसने कहा, वह श्राविका दूसरों के विचार पढ़ लेती है और जब मैं आज भोजन कर रहा था, उस सुन्दर युवती को देखकर मेरे मन में तो विकार भी उठे थे। वे भी पढ़ लिए गये होगे। मैं किस मुंह से वहां जाऊं। मैं तो आंखें नीची करके वहां से भागा। वह मुझे भन्ते कह रही थी, मुझे भिक्षु कह रही थी, मुझे आदर दे रही थी। मेरे प्राण कांप गये, मेरे मन में क्या उठा—और उसने पढ़ लिया होगा। फिर भी मुझे भिक्षु और भन्ते कहकर आदर दे रही थी। कृपया मुझे क्षमा करें। वहां मैं नहीं जाऊंगा।

बुद्ध ने कहा, तुम्हें वहां जानकर भेजा था। यह तुम्हारी साधना का हिस्सा है, तुम्हें वहीं जाना पड़ेगा, रोज रोज वहीं जाना पड़ेगा। जब मैं नहीं कहूं या जबतक तुम न आकर मुझसे कहो कि अब मैं वहां जा सकता हूं, तबतक वहीं जाना पड़ेगा। वह तुम्हारी साधना का हिस्सा है। उसने कहा, मैं

कैसे जाऊंगा, किस मुंह को लेकर जाऊंगा और कल अगर फिर वही विचार उठे तो मैं क्या करूंगा ? बुद्ध ने कहा, तुम एक ही काम करना, एक छोटा सा काम करना, और कुछ मत करना। जो भी विचार उठे उसे देखते हुए जाना। विकार उठे उसे भी देखना। कोई भाव मन में आये, काम आये, क्रोध आये, कुछ भी आये उसे देखना और कुछ मत करना। तुम सचेत रहना भीतर जैसे कोई अन्धकारपूर्ण घर में कोई एक दिये को जला दे और उस घर में सब चीजें दिखायी पड़ने लग जायं, ऐसे तुम अपने भीतर अपने बोध को जगाये रखना कि तुम्हारे भीतर जो भी चले वह दिखायी पड़े, वह स्पष्ट दिखायी पड़े। बस तुम ऐसे जाना। वह भिक्षुक गया, उसे जाना पड़ा। भय था, पता नहीं क्या होगा लेकिन वह अभय होकर लौटा। वह नाचता हुआ लौटा। कल डरा हुआ लौटा था, आज नाचते हुए आया। कल आंखें नीचे झुकी थीं।, आज आंखें आकाश को देखती थीं। आज उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे और जब वह लौटा तो बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा और उसने कहा, धन्य हैं, क्या हुआ यह। जब मैं सजग था तो मैंने पाया, वहां तो सन्नाटा था, जब मैं उसकी सीढ़ियां चढ़ा तो मुझे अपनी श्वांस भी मालूम पड़ रही थी कि भीतर जा रही है, बाहर आ रही है। मुझे हृदय की धड़कन भी सुनायी पड़ने लगीं। कितना सन्नाटा था मेरे भीतर। कोई विचार सरकता तो मुझे दिखता। लेकिन कोई विचार सरक नहीं रहा था। एकदम शांत उसकी सीढ़ियां चढ़ा। मेरे पैर उठे तो मुझे मालूम था कि मैंने बायां पैर उठाया और दायां रखा और मैं भीतर गया और भोजन करने बैठा। यह जीवन में पहली दफा हुआ कि मैं जो कर रहा था वह मुझे दिखायी भी पड़ता था। मेरे हाथ का कम्पन भी मालूम होता था। श्वांस का कम्पन भी मुझे स्पर्श और अनुभव हो रहा था और तब मैं बड़ा हैरान हो गया। वहां मेरे भीतर कुछ भी नहीं था, एकदम सन्नाटा था। वहां कोई विचार नहीं था। कोई विकार नहीं था। बुद्ध ने कहा, जो भीतर सचेत हैं, जो भीतर जागा हुआ है, जो भीतर होश में है, विकार उसके द्वार पर आने वैसे ही बन्द हो जाते हैं जैसे किसी घर में प्रकाश हो तो उस घर में चोर नहीं आते। जिस घर में प्रकाश हो तो उससे चोर दूर से ही निकल जाते हैं। वैसे ही जिसके मन में ही जागरण हो, अमूर्छा हो, बोध (Awareness) हो, उसके चित्त के द्वार पर विकार आने बन्द हो जाते हैं, निश्शेष हो जाते हैं। मैं कहता हूं आपने क्रोध कभी देखा नहीं, क्योंकि क्रोध देखते ही क्रोध विलीन हो जाता। आपने कभी उसे देखा नहीं, अगर

देखते तो विलीन हो जाता। जो भी देख लिया जाये मन के तल पर, वही विलीन हो जाता है। जो भी देख लिया जाय उसकी परिपूर्णता में वही विलीन हो जाता है। उसके विलीन हो जाने पर जो शेष रह जाता है वह है प्रेम, वह है, ब्रह्मचर्य, वह है अक्रोध, वह है शांति, वह है अहिंसा, वह है करुणा। जो शेष रह जाता है वह हमारा स्वभाव है, उसे कहीं से लाना नहीं है। जो विजातीय तत्व (Foreign element) हमारे ऊपर हैं वही भर विलीन हो जाय तो जो हमारे भीतर है वह प्रगट हो जायगा।

परमात्मा हमारा स्वभाव है। उस स्वभाव में करुणा सहज है, प्रेम सहज है, ब्रह्मचर्य सहज है, दया और अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और सरलता वहां सहज है। अगर विजातीय विलीन हो जाय तो वह सहजता प्रकट हो जायगी। इसलिए मैंने कहा, साधुता सहज (Sponteneous) सरलता है, कबीर ने जो वचन कहा, 'साधु सहज समाधि भली' उसका अर्थ है कि जो बिल्कुल सहज होकर देखेगा उसे समाधि उत्पन्न हो जायगी, विकार विलीन हो जायेंगे और भीतर से उसका जन्म होगा जो सत्य है, । लेकिन यह किसी के पीछे जाने से नहीं होगा, अपने ही भीतर आने से होगा। यह किसी का अनुगमन करने से नहीं होगा, अपनी ही वृत्तियों का अनुगमन करने से होगा। महावीर और बुद्ध के पीछे नहीं जाना है। क्रोध और अकाम के पीछे जाना है। उनको पकड़ना और पहचानना है। कोई आदर्श आपको बनाने की जरूरत नहीं है। आदर्श तो आपके भीतर मौजूद हैं। आपको कुछ होना नहीं है। अगर जो आप हैं उसी को जान सकें तो सब हो जायगा लेकिन हम कुछ होने में लगते हैं। इससे जटिलता, उलझाव और द्वन्द्व पैदा हो जाता है। कुछ होने में नहीं लगें, जो है उसे जानने में लगें और घबरायें नहीं क्रोध से, घबरायें नहीं काम से, न घबरायें घृणा से, न घबरायें द्वेष से, न घबरायें मोह–लोभ से, घबराने की कोई जरूरत नहीं है। इनमें प्रवेश करें, इनके प्रति सजग हो, जानें, होश से इनको पहचानें, । इनको विलीन करें, इनमें प्रवेश कर जायें। जो व्यक्ति अपने लोभ में प्रवेश कर जायगा वह अलोभ पर पहुंच जाता है। जो अपने क्रोध में प्रवेश कर जाता है वह अक्रोध को पहुंच जाता है। जो अपने काम (Sex) में प्रवेश कर जाता है वह अपने ब्रह्मचर्य को अनुभव कर लेता है। लेकिन हम तो बाहर तथा बाहर से डरे एंव परेशान, हैं। उनमें प्रवेश ही नहीं करते। कभी उनको जानना नहीं चाहते। कभी उनमें प्रवेश करके उनकी आन्तरिक जड़ में जाना नहीं चाहते। हम तो बाहर ही घबराये रहते हैं। बुरे लोग वे हैं जो बुरा काम करने में नष्ट हो जाते हैं।

भले लोग वे हैं जो बुरे काम के डर से ही नष्ट हो जाते हैं।

एक गांव में एक वृद्ध अपने गांव की सीमा के बाहर बैठा रहा। वह फकीर था गांव के बाहर ही रहता था। वहां उसने देखा, एक बड़ी विकराल छाया गांव में प्रवेश कर रही है। उसने उस छाया से पूछा, तुम कौन हो। यह छाया किसकी है और कहां जा रही है। सुनायी पड़ा कि महामारी हूं और गांव में एक हजार बुरे लोगों को नष्ट करने आयी हूं। उसने कहा, सिर्फ बुरे लोगों को न ? हां सिर्फ बुरे लोगों को। तीन दिन उस गांव में रहूंगी और एक हजार बुरे लोगों को नष्ट करुंगी। लेकिन तीन दिन में तो कई हजार लोग गांव में नष्ट हो गये। उसमें बुरे ही लोग नहीं थे। बुरे से भले लोग थे, साधु थे, सज्जन थे। वह वृद्ध सजग रहा। तीसरे दिन जब वह लौटी तो उसने पूछा कि यह क्या हुआ ? धोखा दिया। तुमने कहा, एक हजार बुरे लोगों को नष्ट करूंगी। तीन दिन में तो हजारों लोग नष्ट हो गये। उसमें बुरे, भले, साधु और सज्जन भी नष्ट हुए। वह महामारी बोली : मैंने तो एक हजार बुरे लोगों को ही नष्ट किया बाकी अच्छे लोग भय से नष्ट हो गये। वह मैंने नष्ट नहीं किये। मेरा जिम्मा एक हजार का है, बाकी सब अपने से मर गये।

यह तो बिल्कुल ही काल्पनिक बात है लेकिन बिल्कुल सच है। बुरे लोग क्रोध करके नष्ट हो जाते हैं, अच्छे लोग क्रोध से डर कर नष्ट हो जाते हैं। तीसरा रास्ता है न तो क्रोध करने का सवाल है, न क्रोध से लड़ने का सवाल है। क्रोध को जानने का सवाल है। न तो क्रोध के पीछे क्रोधी हो जाने का सवाल है और न क्रोध से डरकर क्रोध को लादने का सवाल है। सवाल क्रोध को जानकर क्रोध को विसर्जित करने का है और जानते ही क्रोध विसर्जित हो जाता है, जानते ही जटिलता विसर्जित हो जाती है।

ज्ञान से बड़ी कोई क्रान्ति नहीं है। अभी रास्ते में हम आते थे तो बात चलती थी कि ज्ञान हो जाय तो फिर क्या करेंगे, ज्ञान हो जाय तो फिर आचरण कैसे करेंगे। ज्ञान हो जाय तो उसे जीवन में कैसे लायेंगे। ?

यह बात ही गलत है। यह वैसे ही गलत है जैसे कोई पूछे कि प्रकाश हो जाय तो फिर अन्धेरे का क्या करेंगे। जैसे कोई पूछे कि यहां प्रकाश तो जल गया, अन्धेरे का क्या करेंगे ? हम उससे क्या कहेंगे। हम उससे कहेंगे कि फिर तुम प्रकाश के जलने का अर्थ ही नहीं जानते उसका अर्थही है कि अन्धेरा नहीं हो गया। ज्ञान का जो अर्थ ही है कि अज्ञान नहीं हो गया और जो आचरण अज्ञान से निकलता था वह अज्ञान के चले जाने पर नहीं हो जायगा, वह रह कैसे जायगा। अज्ञान अनाचरण है,

ज्ञान आचरण है। ज्ञान को आचरण में लाना नहीं होता है। ज्ञान हो तो आचरण अपने आप है। अज्ञान को भी आचरण में नहीं लाना होता है। अज्ञान हो तो अनाचरण अपने आप है। आप कोई क्रोध को लाते हैं? आपने कभी क्रोध लाया है? आप हमेशा पाते हैं कि क्रोध आया है। आप क्रोध को कभी लाये हैं? आपने कभी घृणा की है? आप हमेशा पाते आये हैं। आये का क्या अर्थ है। आये का अर्थ है भीतर अज्ञान हो तो अनाचरण आता है। ठीक वैसे ही अगर भीतर अज्ञान हो तो आचरण आता है, वह भी लाया नहीं जाता है। अगर भीतर ज्ञान हो तो प्रेम वैसे ही आयेगा जैसे घृणा आती है अभी। करुणा वैसे ही आयेगी जैसे क्रूरता आती है, अहिंसा वैसे ही आयेगी जैसे हिंसा आती है अभी। अज्ञान का जो प्रकाशन है वह अनाचरण है, ज्ञान का जो प्रकाशन है वह आचरण है। आचरण थोपा नहीं जाता है। वह ज्ञान से मिश्रित होता है, बढ़ता है और आता है। जीवन में जो भी है वह बहता है और आता है। किया कुछ भी नहीं जाता है।

और इसलिए यह जो मैंने कहा कि जीवन सरल हो, जटिल न हो, उससे यह अर्थ मत ले लेना कि आपको सरलता लानी है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि अपनी जटिलता केवल जाननी है और जटिलता में प्रवेश करना है। जटिलता में प्रवेश का सूत्र है जटिलता के प्रति चित्त की सारी वृत्तियों का जागरण।

मैंने कल कहा था कि विचार के प्रति साक्षी हों तो स्वतन्त्रता आयेगी। भाव के प्रति साक्षी हों तो सरलता आती है। विचार के प्रति साक्षी हों तो स्वतन्त्रता आती है। जो विचार को जानने लगता है वह विचार से मुक्त हो जाता है, जो भाव को जानने लगता है वह भाव से मुक्त हो जाता है। ज्ञान विचार से मुक्ति है, ज्ञान भाव से मुक्ति है। हमारा भाव जटिल हो, तो हम सत्य को नहीं जान सकते विचार जटिल हो तो सत्य को नहीं जान सकते। विचार सरल होगा, भाव सरल होगा तो वह तैयारी हो जायगी हमारे भीतर जो हमें सत्य को जानने के लिए आंख खोल देगी।

इसलिए मैंने दूसरे चरण की बात कही है चित्त की सरलता। कल तीसरे सूत्र की बात करूंगा, चित्त की शून्यता। तीन ही सूत्र हैं – चित्त की स्वतंत्रता, चित्त की सरलता और चित्त की शून्यता। स्वतन्त्रता, सरलता और शून्यता को जो साथ लेता है वह समाधि को उपलब्ध होता है।

मनुष्यता और नारी

(एक प्रवचन)

संकलन : श्री. अरविंद

मनुष्य के इतिहास में नारी जाति के साथ जो अत्याचार और अनाचार हुआ है उसके परिणाम से पूरी मनुष्य जाति के अहित हुए हैं।

मनुष्य की पूरी जाति, मनुष्य का पूरा जीवन, मनुष्य की पूरी सभ्यता और संस्कृति अधूरी है क्योंकि नारी ने उस संस्कृति के निर्माण में कोई भी दान (Contribution) नहीं किया। नारी कर भी नहीं सकती थी। पुरुष ने उसे करने का कोई मौका भी नहीं दिया। हजारों वर्षों तक स्त्री पुरुष से नीची और छोटी और हीन समझी जाती रही है। कुछ तो देश ऐसे थे जैसे चीन में हजार वर्ष तक यह माना जाता रहा कि स्त्रियों के भीतर कोई आत्मा नहीं होती। हीनता ही नहीं, स्त्रियों की गिनती जड़ पदार्थों के साथ की जाती थी। आज से सौ बरस पहले चीन में अपनी पत्नी की हत्या पर किसी पुरुष को, किसी पति को कोई भी दण्ड नहीं दिया जाता था क्योंकि पत्नी उसकी सम्पदा थी। वह उसे जीवित रखे या मार डाले, इससे कानून का और राज्य का कोई सम्बन्ध नहीं।

भारत में भी स्त्री को पुरुषों की समता में, पुरूषों की समानता में कोई अवसर और जीने का मौका नहीं मिला। पश्चिम में भी वही बात थी। चूंकि सारे शास्त्र और सारी सभ्यता और सारी शिक्षा पुरुषों ने निर्मित की है, इसलिए पुरुषों ने अपने आप को बिना किसी से पूछे श्रेष्ठ मान लिया है, स्त्री को श्रेष्ठता देने का कोई कारण नहीं। स्वभावतः इसके घातक परिणाम हुए। सबसे बड़ा घातक परिणाम तो यह हुआ कि स्त्रियों के जो भी गुण थे वे सभ्यता के विकास में

सहयोगी न हो सके। सभ्यता अकेले पुरुषों ने विकसित की। अकेले पुरुष के हाथ से जो सभ्यता विकसित होगी उसका अंतिम परिणाम युद्ध के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता। अकेले पुरुष के गुणों पर जो जीवन निर्मित होगा वह जीवन हिंसा के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जा सकता। पुरुष की प्रवृत्ति में, पुरुष के चित्त में ही हिंसा का, क्रोध का, युद्ध का कोई अनिवार्य हिस्सा है। नीत्से ने आज से कुछ ही बीसी पहले यह घोषणा की कि बुद्ध और क्राइस्ट स्त्रैण रहे होंगे क्योंकि उन्होने करुणा और प्रेम की इतनी बातें कही हैं वे बातें पुरुषों के गुण नहीं हैं। नीत्से ने क्राइस्ट को और बुद्ध को स्त्रैण, स्त्रियों जैसा कहा है। एक अर्थ में शायद उसने ठीक ही बात कही है वह इस अर्थ में कि जीवन में जो भी माधुर्य से भरे गुण हैं, सौदर्य, शिव की कल्पना और भावना है, वह स्त्री का अनिवार्य स्वभाव है। मनुष्य की सभ्यता माधुर्य और प्रेम और सौंदर्य से नहीं भर सकी, क्रूर और कड़वी हो गयी, कठोर और हिंसक हो गयी, और अंतिम परिणामों में केवल युद्ध लाती रही।

इसके पीछे दो बातों का ही हाथ है। एक तो स्त्री के गुणों को कोई सम्मान नहीं दिया गया और दूसरे, स्त्री ने कभी अपने गुणों को विकसित करने की कोई चेष्टा और कोई सक्रिय उपाय नहीं किया। यह जानकर आपको हैरानी होगी, अगर कोई स्त्री पुरुषों के गुणों में आगे हो जाय जैसे जोन आफ आर्क या रानी लक्ष्मी बाई तो सारे जगत में इस बात की प्रशंसा होती है कि रानी लक्ष्मी बाई बहुत बहादुर, बहुत सम्मान योग्य स्त्री हैं। लेकिन क्या कभी आपने यह सुना है कि कोई पुरुष स्त्रियों के गुणों में विकसित हो जाय तो उसका कभी भी कोई सम्मान हुआ है? अगर कोई पुरुष स्त्रियों जैसा प्रतीत हो तो उसका अपमान होगा और कोई स्त्री पुरुष के जैसी प्रतीत हो तो उसका सम्मान होगा और चौरस्तों के ऊपर उसकी मूर्तियां खड़ी की जायेंगी। पुरुषों ने अपने गुणों को अनिवार्य रूप से स्वीकार कर लिया है और स्त्रियों ने भी इसपर स्वीकृति दे दी, यह बहुत आश्चर्य की बात है। स्त्रियों ने कभी सोचा भी नहीं कि उनके व्यक्तित्व की भी अपनी कोई गरिमा, अपना कोई स्थान, अपनी कोई प्रतिष्ठा है। इस तीन चार हजार बरस की गुलामी के बाद एक विद्रोह, एक प्रतिक्रिया, (Reaction) पैदा होना शुरू हुई; और स्त्रियों ने यह घोषणा करनी शुरू कर दी कि हम पुरुषों के समान हैं और बराबर हैसियत और बराबर अधिकार मांगते हैं। लेकिन यह फिर दुबारा भूल हुई जारही है जिसका आपको शायद पता न हो। उस भूल के सम्बन्ध में भी समझ लेना जरूरी है।

मैं कहना चाहता हूं कि स्त्रियां न तो पुरुषों से हीन हैं और न समान हैं। स्त्रियां पुरुषों से भिन्न हैं, वे बिल्कुल भिन्न हैं। न उनके नीचे होने का सवाल है, न उनके समान होने का सवाल है, स्त्रियां पुरुषों से बिल्कुल भिन्न हैं और जबतक स्त्रियां अपनी भिन्नता की भाषा में, अपने अलग व्यक्तित्व की भाषा में सोचना शुरू नहीं करेंगी तबतक या तो वे पुरुष की दास होंगी या पुरुष की अनुयायी होंगी और दोनों स्थितियां खतरनाक हैं। पश्चिम में स्त्रियों ने एक बगावत की है, एक विद्रोह किया है, और परिणाम यह हुआ है कि स्त्रियां पुरुषों जैसे होने की दौड़ में, होड़ में पड़ गयीं। जो पुरुष करते हैं जैसे पुरुष हैं वैसे ही स्त्रियों को भी हो जाना चाहिए। जो शिक्षा पुरुषों को मिलती है वही स्त्रियों को भी मिलनी चाहिए। अगर पुरुष युद्ध के मैदान में लड़ने जाते हैं तो स्त्रियों को भी युद्ध क्षेत्र के ऊपर सैनिक बनकर उपस्थित होना चाहिए। इस बात की कल्पना भी नहीं आपको कि पुरुषों की नकल में स्त्रियां हमेशा द्वितीय कोटि की होंगी, प्रथम कोटि की कभी भी नहीं हो सकतीं। क्योंकि जिन गुणों में वे प्रतिस्पर्धा करने जा रही हैं वे पुरुषों के लिए सहज गुण हैं और स्त्रियों के लिए असहज धर्म। ऐसी स्थिति में स्त्रियां एकदम कुरूप, अपने स्वभाव से च्युत, जो हो सकती थीं उससे वंचित हो जायेंगी और परिणाम बड़े घातक होंगे जिनकी हमें धारणा नहीं, कोई कल्पना भी नहीं।

जो शिक्षा पुरुषों को मिलती है वही शिक्षा स्त्रियों को देना अत्यन्त खतरनाक है, एकदम गलत है। उचित है कि पुरुष गणित सीखे, उचित है कि पुरुष विज्ञान सीखे, लेकिन बहुत उचित होगा कि स्त्री कुछ और सीखे जो पुरुष नहीं सीखता। उसे जीवन में कुछ और करना है। उसके ऊपर जीवन ने कोई और दायित्व दिया है, कोई दूसरा उत्तरदायित्व (Responsibility) है उसके ऊपर। उसके ऊपर प्रेम का, सृजन का कोई दूसरा भार है। गणित सीख लेने से दूकानें चल सकती होंगी, बच्चे नहीं बड़े किये जा सकते। साइन्स से फैक्टरी चलती होगी लेकिन परिवार नहीं चल सकते। और परिणाम यह हुआ है कि स्त्री को पुरुष जैसी दीक्षा और शिक्षा और समानता के भावने स्त्रियों से जो भी उनका महत्वपूर्ण मातृत्व था वह सब छीन लिया है। उनके जीवन में जो भी गौरवपूर्ण पत्नीत्व था वह सब छीन लिया है। उनके भीतर जो भी स्त्रैण था वह सब नष्ट किया जा रहा है। वे करीब करीब पुरुष की नकल में निर्मित की जा रही हैं और वे बहुत प्रसन्न भी मालूम होती हैं। इस प्रसन्नता के लिए हजार हजार आंसू आज नहीं तो कल स्त्रियों को रोने ही पड़ेंगे। शायद हमें इस बात का ख्याल नहीं कि स्त्री

और पुरुष के चित्त में बुनियादी भेद और भिन्नता है, और यह भिन्नता अर्थपूर्ण है। पुरुष और स्त्री का सारा आकर्षण उसी भिन्नता पर निर्भर है। वे जितने भिन्न हों, वे जितनी दूर हों, उनके भीतर जितनी ध्रुवता (Polarity) हो उत्तर और दक्षिण ध्रुवों की तरह उनमें भिन्नता हो उतना ही उनके बीच कशिश, आकर्षण, (Gravitation) होगा। उतना ही उनके बीच प्रेम का जन्म होगा, जितना उनका फासला हो, जितनी भिन्नता हो, जितने उनके व्यक्तित्व अनूठे और अलग हों, जितने वे एक दूसरे जैसे नहीं बल्कि एक दूसरे के परिपूरक, (Complimentary) हों। अगर पुरुष गणित जानता हो और स्त्री भी गणित जानती हो तो ये दोनों बातें उन्हें निकट नहीं लातीं। ये बातें उन्हें दूर ले जायेंगी। अगर पुरुष गणित जानता हो और स्त्री काव्य जानती हो, संगीत जानती हो, नृत्य जानती हो तो वे ज्यादा निकट आयेंगे, वे जीवन में ज्यादा गहरे साथी बन सकते हैं। और जब एक स्त्री पुरुषों जैसी दीक्षित हो जाती है तो ज्यादा से ज्यादा वह पुरुष को स्त्री होने का साथ भर दे सकती है लेकिन उसके हृदय के उस अभाव को जो स्त्री के लिए प्यासा और प्रेम से भरा होता है, उस अभाव को पूरा नहीं कर सकती।

पश्चिम में परिवार टूट रहा है, भारत में भी परिवार टूटेगा और परिवार के टूटने के पीछे आर्थिक कारण उतने नहीं हैं जितना स्त्रियों का पुरुषों जैसा शिक्षित किया जाना। पुरुष की भांति शिक्षित होकर स्त्री एक नकली पुरुष बन जाती है असली स्त्री नहीं बन पाती। भिन्नता का लेकिन हमें कोई ख्याल नहीं है और भिन्न शिक्षा और दीक्षा का हमें कोई विचार नहीं है। यह बात सारी जगत की स्त्रियों को कह देने जैसी है– उन्हें अपने स्त्री होने को बचाना है। कल तक पुरुषों ने उन्हें हीन समझा था, नीचा समझा था और इसलिए नुकसान पहुंचा था, आज पुरुष अगर राजी हो जायगा कि तुम हमारे समान हो, तुम हमारी दौड़ में सम्मिलित हो जाओ। इस दौड़ में स्त्रियों कहां पहुंचेंगी ? और सवाल यही नहीं है कि स्त्रियों को नुकसान होगा, सवाल यह है कि पूरा जीवन नष्ट होगा।

सी. एम्. जोड ने, पश्चिम के एक विचारक ने एक बड़ी अद्भुत बात लिखी। उसने लिखा कि जब मैं पैदा हुआ था तो मेरे देश में घर (Homes) थे, लेकिन अब जब मैं बूढ़ा होकर मर रहा हूं तो मेरे देश में घर जैसी कोई चीज नहीं है, केवल मकान (Houses) रह गये हैं। होम और हाउस में कुछ फर्क है। घर और मकान में कोई भेद है। होटल में और घर में कोई फर्क है। अगर कोई भी फर्क है तो वह सारा फर्क स्त्री के ऊपर निर्भर है, और किसी पर निर्भर नहीं है। एक मकान घर बन जाता है अगर उसके बीच में केन्द्र पर कोई स्त्री हो। लेकिन

स्त्री अगर पुरुष जैसी हो जाती है तो घर मकान रहा जाता है, घर निर्मित नहीं हो पाता। दो साथ रहनेवाले लोग होते हैं लेकिन पति और पत्नी नहीं होते। बच्चे पैदा होते हैं लेकिन नर्स और बच्चे का सम्बन्ध होता है, मां का और बेटे का सम्बन्ध नहीं होता। क्योंकि वह जो स्त्री थी, जो मां बन सकती थी उसके विकास के लिए हमने कुछ भी नहीं किया है। हमारे स्कूल और कालेज क्या सिखा रहे हैं? स्त्रियों के लिए क्या दे रहे हैं? वे ही उपाधियां दे रहे हैं जो बरसों से दी जा रही है। वे उन्हीं परीक्षाओं में से उन्हें निकाल रहे हैं जिनमें से पुरुषों को निकाला जा रहा है। वे उसी भांति की कवायद, उसी भांति के खेल खिला रहे हैं स्त्रियों को जो पुरुष खेल रहे हैं। और बड़े आश्चर्य की बात है इस सदी में जबकि हम मनुष्य के शरीर और फिजियोलोजी के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते हैं, हमें इतना भी पता नहीं है कि वही कवायद, वही कसरत (exercise) पुरुष और स्त्री, को नहीं करवायी जा सकती है। स्त्री के शरीर के नियम, स्त्री के शरीर की बनावट बहुत भिन्न है। उसे अगर वही कवायद करवायी जाती है और उसे एन. सी. सी. में वही दायें बांए करवाया जाता है जो पुरुष सैनक सीख रहे हैं तो हम स्त्री के भीतर किसी बुनियादी तत्व को तोड़ देंगे जिसका हमें कोई पता ही नहीं, जिसका हमें ख्याल ही नहीं है। अतीत के लोग नासमझ नहीं थे। पुरुषों के लिए उन्होंने व्यायाम खोजे, स्त्रियों के लिए नृत्य खोजा। कोई अर्थ था, कोई कारण था। नृत्य में एक गति है, नृत्य में एक लययुक्तता (Rhythm) है जो स्त्रियों के शरीर के हार्मोन्स को, उसके शरीर के रासायनिक तत्वों को एक और तरह की गतिमयता और संगीत से भरते हैं। कवायद बात दूसरी है। कवायद के अर्थ और प्रयोजन भिन्न हैं। कवायद मनुष्य के भीतर जो क्रोध है उसे सजग करती है, मनुष्य के भीतर जो लड़ने की प्रवृत्ति है उसे तीव्र करती है। मनुष्य के भीतर जो दूसरे के साथ हिंसा का भाव है उसे मजबूत करती है, बलवान करती है। कवायद अगर स्त्रियों को सिखायी गयी तो घर नष्ट हो जाने वाले हैं इसका हमें कोई ख्याल ही नहीं। हम उनके पूरे शरीर को नुकसान पहुंचा रहे हैं। यहां तक आप हैरान होंगे, जिन मुल्कों में स्त्रियों को पुरुषों जैसी सौन्दर्य शिक्षा दी जा रही है वहां जवान लड़कियों को भी होठों पर मूंछ आनी शुरु हो जाती हैं। यह बहुत आसान है, कठिन नहीं है। अगर ठीक पुरुषों जैसी कवायद करवायी जाय बच्चियों को तो उनके होठों पर मूंछों के बाल आने शुरू हो जायेंगे। शरीर के हार्मोन्स अलग तरह से काम करना शुरू करते हैं और शरीर की जो

व्यवस्था है वह अलग तरह से काम करती है। छोटी छोटी बात से फरक पड़ता है। स्त्रियों के शरीर को भी हम पुरुषों के जैसे ढालने की कोशिश कर रहे हैं और अब तो पुरुषों जैसे कपड़े पहनाने की भी सारी दुनिया में व्यवस्था कर रहे हैं। शायद हमें इस बात का कोई भी विचार नहीं है कि जीवन की छोटी छोटी बात सारे जीवन को प्रभावित करती है।

पूर्व के लोग ढीले कपड़े पहनते रहे हैं, पश्चिम के लोग चुस्त कपड़े पहनते रहे हैं। चुस्त कपड़े आदमी को लड़ने को तत्पर बनाते हैं, ढीले कपड़े आदमी को शान्त करते हैं, मौन करते हैं। आज तक दुनिया में किन्हीं साधुओं की किसी भी परम्परा ने चुस्त कपड़े नहीं पहने। यह ऐसे ही व्यर्थ नहीं था। ढीला कपड़ा व्यक्तित्व को एक शिथिलता और शांति देता है, कसे हुए कपड़े व्यक्तित्व को एक तेजी और चुस्ती देते हैं इसलिए हम सैनिकों और नौकरों को चुस्त कपड़े पहनाते हैं लेकिन मालिक दुनिया में कभी चुस्त कपड़े नहीं पहनते हैं। अगर आप चुस्त कपड़े पहने हुये सीढ़ियां चढ़ते हों तो आप दो सीढ़ियां एक साथ छलांग लगा जायेंगें। आपको पता भी नहीं चलेगा कि कपड़े आपको दो सीढ़ी इकट्ठे चढ़वा रहे हैं। अगर आप ढीले कपड़े पहने हैं तो आप एक गरिमा से एक शान से सीढ़ियों को पार करेंगें और चढ़ेंगें। स्त्रियों के कपड़े पुरुषों जैसे कभी भी नहीं होने चाहिए। स्त्रियों के जीवन में हम कुछ और अपेक्षा किये हुए हैं। उनसे घर में एक शांत वातावरण की अपेक्षा है। उनसे घर में एक प्रेमपूर्ण झरने की, एक शांत झील बन जाने की अपेक्षा है। उन्हें चुस्त कपड़े नहीं पहनाये जा सकते और अगर वे पहनती हों तो वे भूल में पड़ गयीं हैं और उस भूल के लिए बहुत मंहगी कीमत चुकानी पड़ेगी। कपड़े तक प्रभावित करते हैं तो शिक्षा तो प्रभावित करेगी ही। हमारी ट्रेनिंग, हम जो सीखते हैं वह हमारे सारे व्यक्तित्व को निर्मित करती है। हम जो सोचते हैं वह हमारे पूरे जीवन को प्रभावित करता है, हम जो विचारते हैं, हम वैसे ही हो जाते हैं। हमें क्या सिखाया जा रहा है और क्या विचार करने के लिए हमें सामग्री दी जा रही है? स्त्रियों को कौन सी बातें सिखायी जा रही हैं, गणित में जो आदमी दीक्षित होता है, विज्ञान में जो आदमी दीक्षित होता है उसकी जीवन के प्रति पकड़ दूसरी होती है। संगीत में और काव्य में जो आदमी दीक्षित होता है उसकी जीवन के प्रति पकड़ दूसरी होती है और छोटी सी पकड़ से सब कुछ भिन्न हो जाता है।

गांधी जी के आश्रम में एक आदमी आना शुरू हुआ। कुछ लोगों ने शिकायत की गांधी से कि यह आदमी अच्छा नहीं है। इस आदमी को आश्रम में

आने देना उचित नहीं है, इस आदमी का चरित्र ठीक नहीं है। इसके गलत जीवन के बाबत बहुत खबरें आश्रम में सुनी जा चुकी हैं। गांधी ने कहा, अगर आश्रम में बुरे आदमी नहीं आ सकेंगे तो आश्रम किसके लिए निर्मित किया गया है? बुरे आदमी आते हैं, हम उनका स्वागत करेंगे। लेकिन एक दिन तो बात बहुत आगे बढ़ गयी और कुछ लोगों ने आकर गांधी को कहा कि अब तो सीमा के बाहर बात चली गयी। जिस व्यक्ति को हम रोकने को कहते थे वह आज शराब घर में बैठा हुआ शराब पी रहा है, हम आंखों से देखकर आये हैं और आप चलकर देख सकते हैं। खादी पहने हुए वह आदमी शराबखाने में बैठा हो तो बड़ा अपमानजनक है यह आश्रम के लिए। गांधी की आंखों में खुशी के आंसू आ गये और गांधी ने कहा कि अगर मैं उस आदमी को वहां शराबखाने में देखता तो हृदय आनन्द से भर जाता। मैं इसलिए आनंदित हो उठता कि अच्छे दिन मालूम होते हैं आने शुरू हो गये। शराब पीनेवाले लोगों ने भी खादी पहननी शुरू कर दी। वे लोग जो खबर लाये थे, वे खबर लाये थे कि खादी पहने हुए आदमी शराब पी रहा है यह बहुत बुरी खबर है लेकिन गांधी ने कहा, मेरा हृदय खुशी से भर जायगा अगर मुझे यह पता चल जाय कि शराब पीनेवाले लोगों ने भी खादी पहननी शुरू कर दी है।

यह जीवन को दो तरह से देखना है। जिन मित्रों ने गांधी को आकर कहा था उनकी जीवन को देखने की जो दृष्टि है वह एक अदालत की दृष्ट है, वह एक वकील की दृष्टि है। गांधी ने जिस तरफ से देखा वह एक मां की दृष्टि है, वह एक स्त्री की दृष्टि है। वह एक वकील की, वह एक अदालत की, एक कानून की दृष्टि नहीं है। क्या फर्क है दोनों दृष्टियों में? पहली दृष्टि में तिरस्कार (Condemnation) है उस आदमी का, उस आदमी की निन्दा है, उस आदमी को छोड़ देने का आग्रह है, उस आदमी से अलग हट जाने की बात है। दूसरी दृष्टि में उस आदमी के भीतर किसी शुभ के दर्शन की कोशिश, उस आदमी के भीतर भी सुन्दर को खोजने का ख्याल है, उस आदमी के सम्बन्ध में भी आशा है अभी। दूसरे विचार में वह आदमी समाप्त नहीं हो गया है, उसके बदल जाने की गुंजाइश हो सकती है। मां का एक बेटा बिगड़ता चला जाय बिगड़ता चला जाय, सारी दुनिया आकर उसको कहे कि लड़का छोड़ देने जैसा हो गया, है, यह लड़का बिगड़ गया है, यह घर में घुसने जैसा नहीं है। लेकिन मां कहेगी अभी बहुत आशा है।

मैं एक छोटे से स्टेशन पर रुका हुआ था। मेरी गाड़ी आने में देर थी,

वह एक छोटे से देहात का स्टेशन था और एक बूढ़ी स्त्री को कुछ लोग लाये थे। उसके सिर पर पट्टियां बंधी थीं। शायद किसी ने उसको लकड़ियों से चोट की थी। दो तीन स्त्रियां भी उसके साथ थीं। वे बाहर बड़े नगर के अस्पताल में उसे ले जाने को लाये हैं। मैंने पूछा, इस स्त्री को किसने मार दिया है? उसकी साथ की स्त्रियों ने कहा कि इसका एक ही लड़का है और उसी लड़के ने इसके लकड़ी से चोट पहुंचाई है, इसके सिर को लहूलुहान कर दिया। यह बेहोश हो गयी थी। अभी अभी होश में आयी है। हम इसे अस्पताल ले जा रहे हैं। दूसरी स्त्री ने जो उसी के साथ थी, कहा कि ऐसे लड़के तो पैदा ही न हों तो अच्छा है। लेकिन उस बूढ़ी ने, जिसके सिर से खून बह रहा था उस दूसरी स्त्री के मुंह पर हाथ रख दिया और कहा, ऐसा मत कहो, अगर लड़का न होता तो आज मुझे मारता भी कौन। लड़का है तो उसने मार भी दिया लेकिन लड़का नहीं होता तो . . . मुझे मारता भी कौन। लड़के का होना ही बहुत है। उसने मारा यह तो बहुत छोटी सी बात है और फिर वह बूढ़ी कहने लगी। लड़के ही हैं, अभी समझ कितनी है। मार दिया, कल समझ वापस आजायेगी।

यह एक मां का हृदय है जो गणित में नहीं सोचता जो कानून में नहीं सोचता। जो किसी प्रेम और आशा से सोचता है।

स्त्रियों की शिक्षा एकदम भिन्न होनी चाहिए ताकि उनकी दृष्टि भिन्न हो। वे जीवन को किन्हीं और ढंगों से सोचने में समर्थ हो सकें। लेकिन नहीं, यह नहीं हो रहा है। हम उन्हें उन्हीं दृष्टियों में, उन्हीं दर्शनों में, उन्हीं विचारों में दीक्षित कर रहे हैं जिनमें पुरुष दीक्षित है और पुरुष ने जो दुनिया बनायी है वह गलत सिद्ध हो चुकी है, इसे कुछ कहने की जरूरत नहीं है। पिछले तीन हजार वर्षों में पुरुषों की दुनियां में १५ हजार युद्ध हुए हैं। शायद ही कोई दिन ऐसा हो जब जमीन पर युद्ध नहीं हो रहे हों। प्रति दिन युद्ध हो रहा है, प्रति क्षण युद्ध हो रहा है, प्रतिक्षण आदमी काटे जा रहे हैं और मारे जा रहे हैं। यह अकेले पुरुषों की बनाई हुई दुनिया है, यह हार चुकी है, असफल हो चुकी है। यह प्रयोग हो चुका है। क्या हम एक प्रयोग और नहीं करेंगे कि स्त्रियां भी इस दुनिया के बनानें में कोई महत्वपूर्ण हिस्सा बटाएं? एक नयी दुनिया को बनाने के लिए कोई आधार रखें या कि वे भी पुरुष की नकल करेंगी और आज नहीं कल सैनिकों के वस्त्र पहनकर नगरों पर एटम बम गिरायेंगी? पुरुष बहुत प्रशंसा करेंगे आपकी। जिस दिन आप एटम बम गिराने में समर्थ हो जायेंगी और तब पुरुष कहेंगे कि बहुत अच्छी स्त्री है। अब ठीक हो गया है सब। जब आप युद्ध के

मैदान पर बन्दूकें लेकर खड़ी हो जायेंगी तो पुरुष आपको बहुत तकमें बाटेंगे, पद्मश्री और भारतभूषण की उपाधियां देंगे और महावीर चक्र देंगे और कहेंगे कि अब स्त्रियां ठीक हो गयी हैं।

पुरुष अपनी ही भाषा में सोचता है, अपनी ही भाषा में स्त्रियों को भी निर्मित करलेना चाहता है बिना इस बात को जाने हुए कि पुरूष खुद बहुत गलत है। उस गलत पुरुष की और संख्या बढ़ाने की कोशिश मत करिये। अकेले पुरुष ही काफी हैं दुनिया को नष्ट करने के लिए और अगर आप भी पुरुषों जैसा व्यवहार करती हैं तो कल मनुष्य जाति का अंत और निकट आ सकता है, और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन अगर स्त्रियां चाहें तो सारे जगत में एक बड़ी क्रांति ला सकती हैं। अगर स्त्रियां चाहें तो पृथ्वी से युद्ध बन्द हो सकते हैं, अगर स्त्रियां चाहें तो सारी बेबकूफिया बन्द की जा सकती हैं, सारी हिंसा बन्द की जा सकती हैं, सारा क्रोध बन्द किया जा सकता है। लेकिन उसके लिए बिल्कुल और तरह की स्त्री को जन्म देना जरूरी है। पुरुष भी नकल नहीं, स्त्री अपने ही गुणों में परिपूर्ण गरिमा को उपलब्ध हो, इसकी दिशा में कुछ काम करना जरूरी है। पुरुष ने जो स्थिति बना ली है, मैं एक छोटी सी कहानी से आपको समझाने की कोशिश करूंगा।

ईश्वर बहुत घबरा गया है पुरुष की इस दुनिया को देखकर। बहुत परेशान हो गया है। आदमी ने जो किया है आदमी के साथ उसकी कथा इतनी दर्दपूर्ण, इतनी दुख भरी है कि जिसका कोई हिसाब नहीं कितनी हत्याएं हुई हैं। हमारी तो स्मृति बहुत कमजोर है इसलिए हम हिसाब भूल जाते हैं। तैमूरलंग ने, नादिर शाह ने, चंगेज खां ने और अभी अभी स्टैलिन और हिटलर ने क्या किया है उसकी कल्पना ही हमें नहीं। अकेले स्टैलिन ने रूस में साठ लाख लोगों की हत्या करवादी है। अकेले हिलटर ने पांच सौ लोग, जब तक वह हुकूमत में रहा, रोज के हिसाब से मारे। प्रति दिन पांच सौ की संख्या पूरी की। और अब तो इन पुरुषों ने बहुत बड़ी ईजाद करली है, एटम और हाईड्रोजन बम बना लिया है और आज नहीं कल वे सारी दुनिया को नष्ट करने के आयोजन में संलग्न है। उनकी तैयारी पूरी है कि आदमी को नहीं बचने देंगे। तो ईश्वर बहुत घबरा गया होगा। उसने दुनिया के तीन बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को अपने पास बुलाया, रुस और ब्रिटेन और अमरीका। और उन प्रतिनिधियों से कहा ईश्वर ने कि मैं बहुत चिन्तित हो गया हूं ऐसे तो जब से मैंने आदमी को बनाया तबसे नींद मुझे नहीं आसकी। रात मेरी बेचैनी से गुजरती है कि

यह आदमी पता नहीं कब क्या कर दे। और जबसे मैंने आदमी को बनाया, तुम्हें पता होगा उसके बाद मैंने फिर कुछ भी नहीं बनाया। क्योंकि आदमी को बनाकर मैं इतना घबरा गया कि तबसे सृष्टि का सारा काम ही मैंने बन्द कर दिया और तबसे मैंने सृष्टि बन्द कर दी है। तबसे आदमी ने चीजें बनानी शुरु कर दी और आदमी ने आखिर में एटम् और हाईड्रोजन बम बनाये। अबतो बहुत घबराहट हो गयी है। मैं पूछता हूं, तुम चाहते क्या हो? तुम्हारी मंशा क्या है? तुम्हारे इरादे क्या हैं? इतनी हत्या का आयोजन किस लिए, इतना श्रम किस लिए? अरबों डालर रोज खर्च किया जा रहा है। सारी जमीन पर आदमी भूखा मर रहा है और एटम बनाने में रुपये खर्च किये जा रहे हैं, आदमी भूखे मरे जा रहे हैं, बिना वस्त्रों के हैं, बिना दवाइयों के हैं, और दूसरी तरफ हम आदमी के मिटाने के आयोजनों में सारी सम्पत्ति नष्ट कर रहे हैं। पृथ्वी की आधी सम्पत्ति हमेशा युद्धों में लगती रही है। अगर युद्ध नहीं होते तो आदमी आज कितना खुशहाल होता? कहना बहुत कठिन है। ईश्वर ने पूछा, उनसे, तुम चाहते क्या हो? मैं तुम्हें वरदान दे दूं और तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूं। तुम एक एक वरदान मांग लो। अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा, हे प्रभु, हमारी एक ही आकांक्षा है और फिर कभी कोई युद्ध न होंगे। फिर हमारे प्रति कोई शिकायत न होगी। पृथ्वी तो रहे, पृथ्वी पर रूस का कोई निशान न रहे तो हमारी आकांक्षा पूरी हो जायगी। ईश्वर ने बहुत वरदान दिये है लेकिन कभी कल्पना भी नहीं की थी कोई ऐसा वरदान मांगेगा। उसने बहुत भय से रुस की तरफ देखा। जब अमरीका ही यह कहता है तो रूस क्या कहेगा इसकी तो कल्पना ही की जा सकती है। रूस के प्रतिनिधि ने कहा महानुभाव, हमें तो विश्वास ही नहीं कि ईश्वर कहीं होता भी है। मुझे तो डर लगता है कि शायद मैं ज्यादा शराब पी गया हूं और आप दिखायी पड़ रहे हैं, या हो सकता है मैं कोई सपना देख रहा हूं और आप दिखायी पड़ रहे हैं। क्योंकि रूस ने आपको पता है, पचास साल से तय कर लिया कि ईश्वर है ही नहीं और सारे मुल्क ने तय कर लिया है एक मत से, ईश्वर नहीं है, फिर आप हो कैसे सकते हैं? और यह तो लोक-तंत्र का जमाना है जनता जो तय कर लेती है– वही होता है। हमने तय कर लिया कि ईश्वर नहीं है, आप हो कैसे सकते हो? जरूर मैं कोई सपना देख रहा हूं या आज ज्यादा शराब पी ली है। लेकिन फिर भी कोई हरजा नहीं। हो सकता है कि हम आपकी पूजा फिर से शुरू कर दें और अपने चर्चो में आपकी मूर्तियां फिर बिठा दें, लेकन एक इच्छा हमारी

पूरी हो जाये। जमीन का नकशा तो हो, पृथ्वी का भूगोल तो हो, लेकिन उस नकशे में हम अमरीका के लिए कोई रंग, कोई रेखा नहीं देखना चाहते हैं। बस इतना हो जाय फिर सब ठीक है, फिर हमारा कोई विरोध आपसे भी नहीं। हम आपकी भी पूजा करेंगे। हमने, पहले जहां आपके मंदिर थे वहां कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर खोल दिये थे। अब जहां जहां कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर हैं हम फिर से मन्दिर बना देंगे, हमें कोई कठिनाई नहीं है लेकिन इतनी हमारी इच्छा पूरी हो जानी चाहिए। भगवान ने बहुत घबराकर ब्रिटेन की तरफ देखा ब्रिटेन ने जो कहा वह ख्याल में रख लेने जैसी चीज है। ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने भगवान के चरणों पर सिर रखकर कहा कि हे महाप्रभु, हमारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। इन दोनों की आकांक्षा एकसाथ पूरी हो जाय तो हमारी आकांक्षा पूरी हो गई। हम कुछ और नहीं मांगते हैं, इन दोनों ने जो मांगा है वह पूरा कर दे फिर हमें कुछ भी नहीं चाहिए।

यह आदमी ने जो दुनया बनायी है, पुरुष ने जो दुनिया बनायी है वह यहां ले आयी है। स्त्रियों का इस दुनिया की बनावट में अबतक कोई हाथ नहीं है। क्या स्त्रियां चुपचाप देखती रहेंगी पुरुषों की इस दुनिया को ? या कि वे कोई भाग लेंगी ? कुछ हिस्सा बटायेंगी ? मैं सोचता हूं, स्त्रियों के पास एक महान शक्ति सोई हुई पड़ी है। दुनिया की आधी से बड़ी ताकत उनके पास है। आधी से बड़ी ताकत कहता हूं। आधी तो इसलिए कहता हूं कि स्त्रियां आधी तो हैं ही दुनिया में, आधी से बड़ी इसलिए कि बच्चे बच्चियां उनकी छाया में पलते हैं और वे जैसा चाहें उन बच्चे और बच्चियों को परिवर्तित कर सकती हैं। पुरुषों के हाथ में कितनी ही ताकत हो, लेकिन पुरुष एक दिन स्त्री की गोद में होता है, वहीं से वह अपनी यात्रा शुरु करता है, और चाहे वह कितना ही बड़ा हो जाय, और चाहे वह वृद्ध ही क्यों न हो जाय, वह अपनी पत्नी के सान्निध्य में अपनी पत्नी की निकटता में निरन्तर अपनी मां का अनुभव करता ही है, निरन्तर अपनी मां की छाया देखता ही है। मां की छाया में बड़ा होता है। मां बचपन से उसके जीवन को छाये रहती है। एक बार स्त्री की पूरी शक्ति जाग्रत हो जाय और वे निर्णय कर लें कि वे किसी प्रेम की दुनिया को निर्मित करेंगी जहां युद्ध नहीं होंगे, जहां हिंसा नहीं होगी, जहां राजनीति नहीं होगी, जहां राजनीतिज्ञ नहीं होंगे, जहां जीवन में कोई बीमारियां नहीं होंगी। अगर स्त्रियां एक ऐसी दुनिया बनानी तय कर लें तो बहुत कठिन नहीं है कि वे एक नयी दुनिया बनाकर खड़ी कर दें और वह दुनिया पुरुषों की

बनायी दुनिया से बहुत बेहतर होगी। आज भी जगत में जिन लोगों ने कुछ महत्वपूर्ण दिया है उन सारे लोगों में स्त्रियों के अद्‌भुत गुण थे। गांधी के ऊपर तो एक स्त्री ने किताब भी लिखी है:– "बापू माई मदर" "गांधी मेरी मां"। गांधी के पास बहुत लोगों को लगा कि उनके मन में मां जैसे बहुत कुछ गुण हैं। बुद्ध के पास जाकर लोगों को लगता था, क्राइस्ट के पास जाकर लोगों को लगता था कि शायद इन आदमियों के भीतर, इन पुरुषों के भीतर भी स्त्रियों की अद्‌भुत क्षमता है।

जहां भी प्रेम है, जहां भी करुणा है, जहां भी दया है वहां स्त्री मौजूद है। इसलिए मैं कहता हूं कि स्त्री के पास आधी से भी ज्यादा बड़ी ताकत है और वह पांच हजार बरसों से बिल्कुल सोयी हुई पड़ी है, बिल्कुल सुप्त पड़ी है। नारी की शक्ति का कोई उपयोग नहीं हो सका है। भविष्य में यह उपयोग हो सकता है। उपयोग होने का एक सूत्र यही है कि स्त्री यह तय करले कि उन्हें पुरुषों जैसा नहीं हो जाना है। दूसरी बात, वे पुरुषों से भिन्न, हैं, इस बात को अनुभव कर लें। उनका व्यक्तित्व, उनका शरीर, उनका मन, उनकी चेतना किन्हीं अलग रास्तो से जीवन में गति करती है, किन्हीं अलग मार्गों से जीवन की खोज करती है। उनकी चेतना (Consciousness) पुरुषों की चेतना से भिन्न है। इस भिन्नता का बोध स्पष्ट होना चाहिए और तीसरी बात उनकी शिक्षा, उनके वस्त्र, उनके चिन्तन, उनकी दीक्षा, उनके विचार सब भिन्न होने चाहिए, पुरुषों जैसे नहीं। तो हम नारी की शक्ति का मनुष्य की संस्कृति में उपयोग कर सकते हैं और वह उपयोग अत्यन्त मंगलदायी सिद्ध हो सकता है।

यह कौन करेगा? यह बात पुरुषों पर नहीं छोड़ी जा सकती, स्त्रियों को अपने ही हाथ में ले लेनी होगी। उन्हें खुद ही सोचना होगा, खुद ही विचार करना होगा, खुद ही रास्ते खोजने होंगे। उन्होंने विचार करना शुरू किया है लेकिन वह विचार बिल्कुल पुरुषों का अनुकरण है और नकल है। उनका कोई अपना चिन्तन, कोई अपनी दृष्टि नहीं है। उसमें कोई उनकी अपनी समझ नहीं है। आप सोचें, विचारें कि नारी की शक्ति का अपव्यय हुआ है या उपयोग ही नहीं हुआ है। या उपयोग हुआ है तो गलत दिशाओं में हुआ है। और अब इतने जोर से नारी दीक्षित की जा रही हैं पुरुषोंकी नकल में, पुरुषों के कालेजों में, पुरुषों के स्कूलों में इतने जोर से उसे ढांचे में ढाला जा रहा है कि यह हो सकता है, सौ बरस बाद दो तरह के पुरुष पृथ्वी पर हों लेकिन स्त्रियां बिलकुल

न रह जायें। उससे बड़ा कोई दुर्भाग्य नहीं हो सकेगा। मनुष्य ने बहुत दुर्भाग्य जाने हैं लेकिन अगर सारी स्त्रियां पुरुषों जैसी हो जायें तो इससे बड़ा दुर्भाग्य नहीं हो सकता। जीवन का सारा आनन्द और जीवन का सारा आकर्षण होगा नष्ट और जीवन भरेगा विष से और पीड़ा से। और विषाद और पीड़ा में सिवाय आत्मघात के कोई विकल्प नहीं रह जायगा। कि आदमी अपने को नष्ट कर दे और समाप्त कर दे।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, इस आशा में कि हो सकता है मेरी बात आपके हृदय की वीणा का कहीं कोई तार छू दे, कोई चिन्तन का वहां जन्म हो जाय, कोई चीज आपको दिखायी पड़ने लगे, कोई चीज आपके जीवन में सक्रिय हो जाय और आपके जीवन में अगर कोई चीज सक्रिय हो जाती है, एक स्त्री के जीवन में अगर कोई चीज सक्रिय हो जाती है तो एक पूरे परिवार के प्राणों में परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। एक स्त्री को बदल लेना पचास पुरुषों के बदलने के बराबर है। इतनी बड़ी शक्ति जिनके हाथ में हो, इतनी बड़ी जिनके हाथ में सामर्थ्य हो, इतने जीवन को बदलने का जिनके लिए अवसर हो, वे अगर जीवन के लिए कुछ भी नहीं करती हों तो निश्चित अपराधी हैं। स्त्री अपराधी है, उसने जीवन को कुछ भी नहीं दिया है। उसने जीवन को बनाने के लिए कोई बुनियाद ही नहीं रखी। लेकिन ये बुनियादें रखी जा सकती हैं। पुरुष की जो गाड़ी है सभ्यता की, यह बिल्कुल एक चाक से भागी जा रही है। इससे बडी दुर्घटनाएं होती रही हैं, बडी दुर्घटनाएं (Accidents) होने की आगे सम्भावना है। दूसरा चाक बिल्कुल जाम है। यह गाड़ी से निकल कर अलग पड़ा हुआ है। परमात्मा करे कि मनुष्य की इस संस्कृति को पूर्णता दे दे। स्त्री भी अपना दान, अपने प्रेम, अपने आनन्द, अपने काव्य, अपने संगीत को जोड़ दे। इस दुनिया में जो अकेले गणित ने, फिजिक्स और केमिस्ट्री ने खड़ी की है, स्त्री भी जोड़ दे अपनी प्रार्थना को उस राजनीति में जो अकेले पुरुषों ने केवल महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ी की है। स्त्री भी जोड़ दे अपनी थोड़ी सी पंक्तियों को उस गीत में जो पुरुष अबतक अपने क्रोध और युद्ध के आवेश में अकेला ही गाता रहा है तो शायद एक ज्यादा सर्वांगीण, ज्यादा अखंड (integrated) सभ्यता का जन्म हो सकता है और अगर वह सभ्यता नहीं जन्मी तो यह सभ्यता मरने के करीब है। इसे मरने से कोई भी नहीं बचा सकेगा। या तो दूसरी सभ्यता जन्मेगी या पूरे मनुष्य के अन्त का क्षण करीब आ गया है। मनुष्य के बचने की बहुत ज्यादा सम्भावना नहीं है।

समाचार विभाग :

धर्म चक्र प्रवर्त्तन :

आचार्यश्री के देशव्यापी कार्यक्रम :

"सत्य नहीं, खोजो स्वतंत्रता। और फिर स्वतंत्र चित्त में सत्य तो वैसे ही चला आता है जैसे सागर में सरितायें।"

माटुंगा बंबई में विशाल सत्संग :

आचार्यश्री १९ जनवरी की मध्यान्ह माटुंगा पधारे, स्वागत समिति ने दादर स्टेशन पर उनका हार्दिक स्वागत किया। स्वागत समिति के अध्यक्ष थे श्री पृथ्वीराज कपूर। उसी दिन रात्रि आचार्यश्री ने सत्संग का उद्घाटन किया। उन्होंने कहा: "स्वतंत्रता है सत्य प्राप्ति की अनिवार्य शर्त। जो चित्त स्वतंत्र है, वही सत्य तक ले जाने का सेतु बनता है: इसलिये मैं कहता हूं: सत्य मत खोजो। खोजो: स्वतंत्रता। क्योंकि जहां स्वतंत्रता है वहां सत्य वैसे ही चला आता है, जैसे सागर में सरितायें आती हैं।"

यह विशाल सत्संग तीन दिनों तक चलता रहा। हजारों लोगों ने इसमें भाग लिया और अपनी मानसिक दासता की बेडियां टूटी हुई अनुभव कीं। यह अनुभव अभूतपूर्व है। आचार्यश्री की क्रांतिदृष्ट हजारों हृदय मंदिरों में प्रतिष्ठित होती जा रही है। जो भी उन्हें सुनता है परिवर्तित हो जाता है। उनका बोलना एक जीवित जादू ही है।

"नारी की अमुक्ति का क्या अर्थ है? नारी अमुक्त है अर्थात् प्रेम ही कारागृह में है।"

माटुंगा में महिलाओं की सभा :

२० जनवरी की मध्यान्ह आचार्यश्री ने महिलाओं की एक विराट सभा को संबोधित किया। माटुंगा में महिलाओं की इतनी बडी सभा पहली ही बार आयोजित हुई थी। महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री की पत्नी श्रीमती वत्सला बहन नाईक ने महिला मंडल की ओर से आचार्यश्री का स्वागत किया और इस सभा की अध्यक्षता की। आचार्यश्री ने अपने मंगल प्रवचन में कहा : "नारी आज भी मुक्त नहीं है। और जबतक नारी पूर्ण मुक्त नहीं होती है तब तक प्रेम ही जैसे कारागृह में है। और प्रेम ही जीवन का प्राण है।"

✶

"मनुष्य गलत है, क्योंकि शिक्षा गलत है। सम्यक् शिक्षा से मनुष्य में निश्चय ही सत्य और सौन्दर्य के फूल लग सकते हैं।"

माटुंगा के महाविद्यालयीन अध्यापकों के बीचः

२१ जनवरी की प्रभात में महाविद्यालयीन अध्यापकों के बीच आचार्य श्री ने अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा: "मनुष्य गलत है, क्योंकि शिक्षा गलत है। शिक्षा के नाम पर जो भी आज तक किया जाता रहा है, वह मनुष्य को दिशाभ्रांत करनेवाला ही सिद्ध हुआ है। इस असम्यक् शिक्षा का केन्द्रीय तत्व है: महत्वाकांक्षा। महत्वाकांक्षा की ज्वर दीक्षा के कारण ही मनुष्यता अनेक रुपों में विक्षिप्त होती जा रही है। महत्वाकांक्षा का विष व्यक्ति को अशांत, तनावग्रस्त और विध्वंशकारी बनाता है। जबकि चाहिये ऐसी शिक्षा जो कि उसे शांत, तनावमुक्त और सृजनशील बना सके। सृजनात्मक और शांत मनुष्य में जीवन सौन्दर्य और सत्य के फूल लगते हैं।"

✶

"नये के निर्माण के पूर्व पुराने को तोडना ही पडता है। वह आवश्यक और अनिवार्य है। लेकिन अकेला विध्वंश अर्थहीन और आत्मघाती है।"

माटुंगा के महाविद्यालयीन छात्रों के बीचः

२२ जनवरी को आचार्यश्री ने विद्यार्थियों की एक महत्ती सभा को संबोधित किया। सभाभवन आचार्यश्री को सुनने के लिये आतुर छात्रों और छात्राओं से

खचाखच भरा था और सैकड़ों विद्यार्थियों की भीड सभाभवन के बाहर भी इकट्ठी थी। और फिर भी सभा में इतनी शांति थी कि ख्याल ही नहीं आता था कि यह विद्यार्थियों की सभा है। आचार्यश्री के व्यक्तित्व का प्रभाव और आकर्षण बूढों और बच्चों सब पर ही एकसमान है। उन्होंने यहां कहा: "मैं छात्रों के विद्रोही रुख को देखकर अत्याधक आनन्दित हूं। लेकिन अभी यह विद्रोह नकारात्मक ही है। इसे विधायक भी बनाना है। नकारात्मकता भी आवश्यक और अनिवार्य है। नये के निर्माण के पूर्व पुराने को तोडना ही पडता है। लेकिन अकेला विध्वंश आत्मघाती और अर्थहीन हो जाता है। उसकी सार्थकता उसके पीछे आनेवाले सृजन में ही है और हो सकती है।"

"जीवन अति में नहीं, समन्वय में है। न अकेला अध्यात्म पर्याप्त है, न अकेली भौतिकता। अति रोग है और उससे सावधान होना आवश्यक है।"

षणमुखानंद सभाभवन में विशेष जनसभा:

२२ जनवरी की मध्यान्ह षणमुखानंद सभा भवन में तो जैसे मनुष्यों का पूर ही आ गया था। ३ हजार का सभा भवन पूर्णतया भर गया था और सैकडों व्यक्ति भवन के बाहर खडे थे। इस सभा में आचार्यश्री भारत के भविष्य पर अपने विचार प्रगट करनेवाले थे। स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री पृथ्वीराज कपूर ने आचार्यश्री का स्वागत किया और श्री. एस. के. पाटिल ने इस सभा का उद्घाटन किया। आचार्यश्री ने यहां कहा: "भारत का भविष्य उज्जवल हो सकता है लेकिन कुछ भूलों से हमें मुक्त हो जाना चाहिये। जैसे हमारी जीवन दृष्टि अधूरी और एकांगी है। हमारी दृष्टि पर अध्यात्म इस भांति छा गया है कि जैसे उसने विज्ञान के लिये जगह ही नहीं छोडी है। जीवन शरीर भी है और आत्मा भी, और इन दोनों के संतुलन में ही सत्य है। पश्चिम एक अति से पीडित है और हम दूसरी अति से। वह भौतिकवाद से पीडित है और हम अध्यात्मवाद से। जबकि पूर्ण संस्कृति दोनों की एकता और मिलन और समन्वय से ही जन्म पा सकती है।"

आचार्यश्री २३ जनवरी की संध्या यहां से विदा हुये। उनके दर्शन और विदाई के समय अनेक व्यक्ति रो रहे थे। वी. टी. स्टेशन पर उनकी विदाई का दृश्य आज भी भूले नहीं भूलता है।"

मनुष्य क्या खोज रहा है? कौनसी संपदा के लिये यह सारी दौड चल रही है? काश। उसे पता हो कि वह जो चाहता है, सब उसमें ही छिपा है।"

मेडिकल कालेज जबलपुर में :

आचार्य श्री २५ जनवरी को मेडीकल कालेज के विद्यार्थियों और अध्यापकों को संबोधित करने पधारे। मेडिकल कालेज के डीन ने उनका स्वागत किया। आचार्य श्री ने यहां कहा : "स्वयं से भागो नहीं, जागो। क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं से ही भागता रहता है वह कहीं भी नहीं पहुंचता है। और पहुंच भी कैसे सकता है? क्योंकि स्वयं से भागने से ज्यादा असंभव और क्या है? भागने की पलायन वादी वृत्ति अनेक जीवनों को व्यर्थ ही मिट्टी में मिला देती है। लेकिन जो स्वयं के प्रति जागता है, वह निश्चय ही जीवन संपदा का प्रभु हो जाता है। क्योंकि, जिसे हम खोज रहे हैं, वह स्वयं में ही छिपा है।"

"जीवन क्या है? परमात्मा क्या है? आनन्द क्या है? इन सारे प्रश्नों का समाधान एक ही शब्द में है। और वह शब्द है : प्रेम :।"

लखनादौन में प्रवचन :

आचार्य श्री २६ जनवरी को लखनादौन पधारे। उनके वचनामृत से लोग आनन्द विभोर हो गये। उन्होंने यहां कहा : "प्रेम, प्रेम, और प्रेम। यही मेरा संदेश है। प्रेम के प्रकाश में ही जीवन प्रभु की यात्रा बनता है। और प्रेम की वर्षा में ही जीवन का बीज अंकुरित होता है। और प्रेम की चुनौती में ही वह सब जो व्यक्ति में छिपा है, प्रगट होता है। फिर, प्रेम ही सौन्दर्य है और प्रेम ही आनन्द है। इसलिये प्रेम में जिओ। प्रेम ही हो जाओ। प्रेम ही स्वांस हो..... प्रेम ही प्यास हो ..... प्रेम ही प्राण हो। और तब तुम अपने आप पा जाओगे कि जीवन क्या है?"

सत्य तो निकट है, लेकिन शास्त्रों ने उसे दूर कर दिया है। सत्य का संगीत तो प्रतिपल बरस रहा है लेकिन हमारे अपने ही शब्दों का कोलाहल उसे हम तक नहीं पहुंचने देता है।"

पाटन में प्रवचन :

आचार्यश्री २८ जनवरी को पाटन पधारे। यहां की जनता वर्षों से उनकी

प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने यहां कहा: "सत्य तो निकट है लेकिन शास्त्र बाधा है। सत्य तो द्वार पर खडा है लेकिन शब्द बाधा हैं। शब्द, शास्त्र और सिद्धांत को छोडने में जो समर्थ है उसे ही मैं साधक कहता हूं। क्योंकि मौन होते ही वह प्रगट हो जाता है, जो कि वस्तुतः है।"

★

"आत्मघात या आत्मक्रांति? मनुष्यता को निर्णय लेना है: आत्मघात या आत्मक्रांति? और अन्य तीसरा कोई विकल्प ही नहीं है।"

विसनगर में प्रवचन :

आचार्यश्री २ फरवरी को विसनगर पधारे। विसनगर की जनता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने एक विशाल सभा को संबोधित करते हुये यहां कहा: "मनुष्य का अतीत हिन्सा और क्रूरता और युद्धों की कथा रहा है। और हमने अपने इस मूर्खतापूर्ण इतिहास से कोई भी सीख नहीं ली है। मनुष्य वैसा का वैसा है। उसमें कोई मौलिक क्रांति नहीं हुई है। लेकिन अब या तो मनुष्य को आमूलतः बदलना होगा या नष्ट होना पडेगा। क्योंकि विज्ञान ने उसके हाथों में ऐसी शक्ति दे दी है कि वह हिन्सक रहकर अब आत्मघात से नहीं बच सकता है। मैं आशा करता हूं कि यह स्थिति निश्चय ही आहिन्सक मनुष्यता के जन्म की चुनौती बनेगी। क्योंकि अब तक मनुष्य हिन्सक था, वह सोचता था कि बिना हिन्सक हुये जीवन की रक्षा असंभव है। अब स्थिति आमूलतः उल्टी हो गई है। अब तो अहिन्सक हुये बिना बचना असंभव है।"

★

"मिटो' ताकि पा सको। खो जाओ ताकि खोज सको। क्योंकि शून्य हो जाना ही पूर्ण को पा लेने की एकमात्र शर्त है।"

आजोल में साधना शिविर :

आचार्यश्री २ फरवरी की रात्रि आजोल पधारे। संस्कारतीर्थ में ३,४, ५ फरवरी को साधना शिविर आयोजित हुआ था। यहां साधकों को संबोधित करते हुये उन्होंने कहा: "धर्मों में धर्म नहीं है। और जिसे धर्म को पाना है, उसे धर्मों से मुक्त होना पडता है। धर्म तो एक है, क्योंकि सत्य एक है। और इस सत्य को पाने की शर्त भी एक ही है। वह है: स्वयं को मिटा देना। अहंकार जहां नहीं है, वहीं सत्य प्रत्यक्ष हो उठता है। शून्यभाव की पृष्ठभूमि में ही पूर्ण के

हस्ताक्षर उपलब्ध होते हैं। इस शून्य भाव को ही मैं ध्यान कहता हूं। "साधकों को शून्य में डूबते देखना अद्‌भुत आनन्द था। प्रतिदिन प्रभात में और रात्रि में ध्यान की साधना चलती थी। थोडे ही क्षणों में चेहरे बदल जाते थे। एक अलौकिक शांति सारे वातावरण पर उतर आती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी भावातीत लोक का अवतरण हो गया है।"

"धर्म कहां है? तीर्थों में, मंदिरों में, संगठनों में, संप्रदायों में? नहीं। नहीं। नहीं। वह तो वहां है जहां हम उसे खोजते ही नहीं हैं। वह तो स्वयं में ही छिपा है।"

अहमदाबाद रोटरी क्लब में प्रवचन :

आचार्यश्री ने ६ फरवरी की संध्या अहमदाबाद रोटरी क्लब को उद्‌बोधित किया। सभाभवन खचाखच भरा था और बाहर तक लोग खडे हुये थे। गुजरात के राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायण जी भी आचार्यश्री को सुनने के लिये आये हुये थे। आचार्यश्री ने यहां कहा: "धर्म का ह्रास धर्मों के कारण हुआ है। मनुष्य को धर्मों ने जोडा नहीं, तोडा है। उन्होंने बात तो प्रेम की की, लेकिन संगठन घृणा के खडे किये हैं। वस्तुतः तो संगठन मात्र के पीछे घृणा और हिन्सा होती है। धर्म का इसलिये संगठन से कोई भी संबंध नहीं है। धर्म साधना है, संगठना नहीं। और इसलिये धर्म अत्यन्त वैयक्तिक है। व्यक्ति जितना ही स्वयं में प्रविष्ठ और प्रतिष्ठित होता है, उतना ही वह धर्म के सत्य को जानता और अनुभव करता है। स्वयं की आत्यंतिक निजता में ही धर्म का सत्य उपलब्ध होता है। इसलिये संगठनों में, संप्रदायों में परंपराओं में धर्म को मत खोजो। भीड और समूह में जो उसे खोजता है वह व्यर्थ ही खोजता है। वह तो निज के एकांत और मौन में है। वह तो स्वयं में ही है। वह न तो मंदिरों में है, न तीर्थों में। वह तो वहां छिपा है, जहां कि हम उसे खोजते ही नहीं हैं। वह तो स्वयं में ही छिपा है।"

"धर्म से भय का क्या संबंध? लेकिन तथाकथित धर्म भय पर ही आधारित है और इसलिये वह मिथ्या है। सत्य धर्म तो वहीं है, जहां अभय है।"

शहीद स्मारक भवन जबलपुर में प्रवचन :

११ फरवरी की रात्रि आचार्य श्री ने जबलपुर की जनता को संबोधित

किया। उन्होंने कहा : "मनुष्य जब तक भय से पीडित होता है तबतक धार्मिक नहीं हो सकता है। लेकिन आज तक उसके भय का ही शोषण किया गया है। सारे तथाकथित धर्म भय पर ही खडे हैं। इसलिये उनके कारण मनुष्य की शांति और शक्ति में वृद्धि नहीं हुई। उल्टे वह और भी दीन हीन हो उठा है। ईश्वर भीरुता की शिक्षा के कारण ही यह हुआ है। मैं कहता हूं कि भय से बडा कोई पाप नहीं है क्योंकि शेष सब पाप भय की छाया की भांति ही उत्पन्न होते हैं। अभय शक्ति है। अभय शांति है। अभय आनन्द है। और यह भी स्मरण रहे कि जो भगवान से भयभीत है, वह कभी प्रभु को प्रेम नहीं कर सकता है, क्योंकि भय से प्रेम तो नहीं, घृणा जरुर ही उत्पन्न हो सकती है।"

★

"मैं शून्य सिखाता हूं। क्योंकि शून्य ही स्वयं का और सत्य का द्वार है। शून्य होने के अतिरिक्त न कोई ध्यान है, न कोई प्रार्थना है, न कोई साधना है।"

मांडूं में साधना शिविर :

आचार्यश्री १६ फरवरी को इंदौर पधारे। १७, १८, १९ फरवरी मांडूं में साधना शिविर आयोजित था। मांडूं के पर्वतीय एकांत और सौन्दर्य में आचार्यश्री के सान्निध्य का आनन्द अवर्णनीय था। इस शिविर में महासती सुमति कुंवर, साध्वी चंदनबाला और अन्य साध्वियां भी उपस्थित थीं। आचार्यश्री के इस अमृत सहवास में साधक और साधिकाओं को जो अनुभव हुए, उन्हें शब्दों में व्यक्त करना तो संभव ही नहीं है। उन्होंने कहा: "मैं मौन सिखाता हूं । मैं शून्य सिखाता हूं। क्योंकि शून्य में ही व्यक्ति वहां होता है, जहां कि वस्तुतः वह है। वह केन्द्र ही परमात्मा है।" और उन्होंने यह कहा ही नहीं। वे साधकों को अपने साथ शून्य की यात्रा पर भी ले गये। जिन्होंने उनकी पुकार की चुनौती स्वीकार की, उन्होंने उसे जानने की दिशा में तीव्र गति अनुभव की जिसे कि आंखों से देखा नहीं जा सकता है और कानों से सुना नहीं जा सकता है।"

★

"अहंकार चाहते हो तो आनन्द न चाहो। अहंकार चाहते हो तो आलोक न चाहो। अहंकार चाहते हो तो आत्मा न चाहो। क्योंकि जहां अहंकार है वहां आनंद, आलोक या आत्मा की उपलब्धि असंभव है।"

धार में प्रवचन :

आचार्यश्री धार की जनता के अत्याधिक आग्रह के कारण पूर्व निश्चित

कार्यक्रम न होने पर भी २० फरवरी को सुबह एक घंटे के लिये धार पधारे। उनके आगमन की खबर बिजली की तरह नगर में फैल गई थी और उनके आने के पूर्व ही सैकडों व्यक्ति टाऊन हाल में इकट्ठे हो गये थे। उन्होंने यहां कहा: "अहंकार है दुख। अहंकार है पीडा। अहंकार है संताप। लेकिन हम उसमें ही जीते हैं। हमने जैसे अंधकार में ही जीने का निश्चय कर लिया है और फिर हम प्रकाश के लिये भी रोते हैं। अहंकार में जीना है तो आलोक मत मांगो, आनन्द मत मांगो, आत्मा मत मांगो। क्योंकि दोनों को एक ही साथ नहीं पाया जा सकता है। क्या यह विरोधाभास आपको दिखाई नहीं पडता है?"

★

"प्रभु क्या है? प्रभु जीवन है। जीवन ही प्रभु है। जीवन का, जीवंतता का ही तो वह दूसरा नाम है।"

नैनपुर में प्रवचन :

आचार्यश्री २५ फरवरी को नैनपुर पधारे। मध्यान्ह उन्होंने एक विचार-गोष्ठी को संबोधित किया और रात्रि एक विशाल जनसभा में अपने विचार प्रगट किये। उन्होंने यहां कहा: "जो परमात्मा को खोजने मंदिरों में जाता है, उसे पता ही नहीं है कि परमात्मा वहां नहीं है।

मनुष्य द्वारा निर्मित मंदिर इतने छोटे हैं कि परमात्मा उनमें कैसे समा सकता है? उसे पाना है तो दीवारों से बंद कारागृहोंमें नहीं, वहां खोजो जहां दीवारें नहीं हैं, सीमायें नहीं हैं, वहां जहां कि अनन्त विस्तार है। जीवन के विस्तार में, जीवन की असीमता में, जीवन की अनतंतामें छिपा वह आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। जीवन में ही खोजो उसे। क्योंकि वह जीवन का, जीवन्तता का ही तो दूसरा नाम है।"

★

"सरितायें सागर को कैसे पाती हैं? सागर की उपलब्धि का उनका रहस्य क्या है? वही रहस्य धर्म का रहस्य भी है। वही परमात्मा को पाने का सूत्र भी है।"

बलसार में सत्संग :

आचार्यश्री के पवित्र सान्निध्य में १, २, ३ मार्च को बलसार में प्रथम बार

सत्संग आयोजित हुआ। यहां के ज्ञान पिपासुओं को इस अमृत अवसर के लिये वर्षों से प्रतीक्षा थी। स्वभावतः उनकी हृदय भूमि पर आचार्यश्री के वचनों का वही परिणाम और प्रभाव हुआ जो ग्रीष्म के बाद सूखी और प्यासी भूमि पर वर्षा की पहली बूंदों का होता है। आचार्यश्री ने यहां कहा: "व्यक्ति जब स्वयं को खोने का साहस जुटा लेता है, तभी वह प्रभु को पाने की पात्रता भी अर्जित कर लेता है। लेकिन हम तो अपने अहंकार को और भरने में लगे रहते हैं, इसीलिये तो प्रभु से दूर होते जाते हैं। प्रभु तो अत्यंत निकट है लेकिन अहंकार की पाषाण दीवार ही उसे दूर कर देती है। सरितायें जब मिटने को तैयार हो जाती हैं, तभी सागर को भी पा लेती हैं। यही रहस्य सूत्र परमात्मा को पाने का भी सूत्र है।"

★

"प्रेम है द्वार। प्रेम है मार्ग। प्रेम है प्राप्ति। प्रभु के मंदिर की सीढियां प्रेम की ही सीढियां हैं:"

पार्डी में प्रवचन :

आचार्यश्री २ मार्च की रात्रि पार्डी पधारे। उन्होंने यहां प्रेम पर अपने विचार प्रगट किये। उन्होंने कहा: "प्रेम में जिओ। प्रेम में ही स्वांस लो। प्रेम ही हो भोजन और प्रेम ही हो निद्रा। प्रेम ही श्रम और प्रेम ही विश्राम। और तब पूछना नहीं पडेगा कि, प्रभु कहां है? प्रेम की पूर्णता ही प्रभु के मंदिर का द्वार है। नहीं.....नहीं। द्वार नहीं, वही मंदिर है। नहीं। नहीं। मंदिर ही नहीं, वही प्रभु है। प्रेम ही प्रभु है।

★

"शरीर की ही आंखें नहीं हैं। आत्मा की भी आंखें हैं। लेकिन विश्वासों के कारण वे आंखें सदा के लिये बंद ही रह जाती हैं।"

अतुल में प्रवचन :

आचार्य श्री ३ मार्च की सुबह अतुल पधारे। उन्होंने यहां कहा: "विचार को जगाओ। विवेक को जाग्रत करो। क्योंकि विवेक ही मनुष्यता का प्राण है। और विश्वास से बचो, अंधेपन से बचो। क्योंकि, वही मनुष्य के जीवन में जो श्रेष्ठतम है, जो सुन्दरतम है, उसके लिये विष सिद्ध होता है। विश्वास... अंध विश्वास विवेक के शत्रु हैं। और उनके कारण ही विवेक जाग ही नहीं पाता,

सुसुप्त ही रह जाता है। मनुष्य के सारे दुखों की कथा अंधेपन की कथा है। विवेक के चक्षु मिलते ही जीवन आमूलतः रुपांतरित हो जाता है। शरीर की आंखों का ही कितना मूल्य है? उनके अभाव में जीवन एक अंधकार ही तो रह जाता है। फिर सोचो कि आत्मा की आंखों का कितना मूल्य होगा? विवेक में ही आत्मा की आंखें छिपी हैं।"

★

"जीवन के प्रति चाहिये आनन्दभाव.....चाहिये प्रेम.....चाहिये कृतज्ञता। इन्हें ही मैं धार्मिक चित्त के लक्षण कहता हूं।"

जबलपुर जीवन जागृति केन्द्र में प्रवचन:

१० मार्च की रात्रि जीवन जागृति केन्द्र की ओर से आयोजित जनसभा को आचार्यश्री ने संबोधित किया। उन्होंने कहा: "हमारा देश अत्यंत दुर्भाग्य से गुजर रहा है। और यह दुर्भाग्य आकाश से नहीं, हमसे ही पैदा हुआ है। जीवन के प्रति हमारी मूल दृष्टि ही अधूरी और भ्रांत है। पहली बात तो यह है कि अति अध्यात्मवाद ने हमें पंगु कर रखा है। हमारी गति और विकास की सारी संभावना ही संसार की निन्दा ने समाप्त कर दी है। संसार असार है, संसार माया है, संसार दुख है.... ऐसी निन्दक धारणाओं ने हमारे गले में फांसी लगा दी है। जीवन के विकास के लिये जीवन के प्रति प्रेम और कृतज्ञता का भाव चाहिये जो कि हममें है ही नहीं। जीवन के प्रति आनन्द भाव न हो तो स्वभावतः सारी सृजनात्मकता अवरुद्ध हो जाती है। धार्मिक व्यक्ति वह नहीं है जो कि जीवन रस का शत्रु हो। धार्मिक व्यक्ति तो वही है जो कि जीवन को ही परमात्मा मानता है। ऐसा धार्मिक व्यक्ति हम पैदा नहीं कर पाये, यही हमारा दुर्भाग्य बन गया है। धार्मिकता के नाम पर तो हमने रुग्णता पा ली है, विक्षिप्तता पा ली है, जीवन विरोधी और निषेधक स्वर पाले हैं। इन सबसे मुक्त हो जाना अति आवश्यक है। इनसे मुक्त होते ही हमारी चेतना और ऊर्जा की गंगा उस सागर की ओर सहज ही गतिमय हो उठेगी। जहां कि तृप्ति है, शांति है, उपलब्धि है।"

★

"सत्य का दर्शन चाहते हैं? तो शून्य का दर्पण बन जाइये। क्योंकि, शून्य की झील में ही उसका प्रतिबिम्ब बनता है।"

पूना में विराट सत्संग:

आचार्यश्री १४ मार्च की संध्या एक त्रिदिवसीय सत्संग के लिये यहां पधारे।

१५, १६, १७ मार्च को प्रतिदिन सुबह और रात्रि उन्होंने प्रवचन दिये। हजारों लोगों ने उनकी अमृतवाणी का पान किया। उनके शब्दों में सत्य की पुकार है और प्रेम की ज्योति है और आनन्द की सुगन्ध है। और यह पुकार, यह ज्योति, यह सुगन्ध उनकी उपस्थिति में इतनी प्रत्यक्ष हो आती है कि प्राण अभिभूत हो उठते हैं। उनके साथ एक नई हवा, एक अलौकिक वातावरण और एक भौतिक क्रांति ही जैसे साकार हो आती है। जिसने भी उन्हें एक बार देखा और सुना है, वही उनका हो जाता है। यहां उन्होंने कहा: "मेरा संदेश क्या है? मैं क्या कहने आया हूं? वही जो कि कहा नहीं जा सकता है... वही जिसे कि शब्दों में बांधने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन उसे जिया जा सकता है। उसे अनुभव किया जा सकता है। उसके साथ एक हुआ जा सकता है। कोई उसे सत्य कहता है, कोई प्रभु और कोई उसे और किन्हीं नामों से पुकारता है। मैं उसे कोई भी नाम नहीं देता हूं। उसका कोई नाम है भी नहीं। वह तो अनाम है। लेकिन जो भी शून्य होने को तैयार है, वह उसके समक्ष साकार हो उठता है। शून्य में ही उस निराकार का प्रतिबिम्ब बनता है और प्रतीति होती है। शून्य है उसका दर्पण। इसलिए उसे चाहते हो तो शून्य बनो। शून्य बनना ही साधना है। वही परम जीवन का द्वार है।"

"प्रेम ही है पूजा। प्रेम ही है प्रार्थना। प्रेम ही है परमात्मा। जो प्रेम में जीता है वही और केवल वही जीवन के रहस्य, आनन्द और रस को उपलब्ध होता है।"

तेजपाल आडीटोरियम बंबई में महिलाओं के बीच:

आचार्यश्री १८ मार्च को बंबई पधारे। उन्होंने महिलाओं की एक विशेष सभा में प्रवचन किया। उन्होंने कहा: "जीवन में प्रेम सबसे बडी शक्ति है, लेकिन मनुष्य धीरे धीरे जैसे इस सत्य को भूल ही गया है। हम प्रेम के बिना ही जीते हैं और इसलिए ही जीवन इतना अर्थहीन और नीरस मालूम पड रहा है। जीवन का छंद, रस और आनन्द प्रेम है। लेकिन जीवन विरोधी शिक्षाओं ने मनुष्य से प्रेम को छीन लिया है। मैं जीवन देवता की पूजा का प्रचारक हूं। मैं जीवन में ही परमात्मा के दर्शन का संदेश देना चाहता हूं। जीवन से भिन्न और विरोधी कोई परमात्मा नहीं है। परमात्मा यहीं है.... अभी और यहीं। परमात्मा संसार में ही है। जो भी है परमात्मा ही है। और यह दर्शन प्रेम से ही हो सकता है। इसलिये प्रेम ही पूजा है, प्रेम ही प्रार्थना है। प्रेम में जो

जीता है, वह निश्चय ही प्रभु को उपलब्ध हो जाता है।"

★

"धर्म एक है। धर्म का न कोई संप्रदाय है, न पंथ है, न विशेषण है। फिर धर्म बाहर भी नहीं है। वह तो स्वभाव है। वह तो स्वरुप है।"

भावनगर में प्रवचन :

आचार्यश्री २८ मार्च की सुबह भावनगर पधारे। वे थोडी ही देर यहां रुके। लेकिन सैकड़ों व्यक्ति उनके दर्शन को आतुर थे। उन्होंने एक विशाल सभा को संबोधित किया और एक छोटी विचार गोष्ठी में जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर दिये। वे जीवन के समस्त पहलुओं में क्रांति लाना चाहते हैं। वे एक अद्‌भुत क्रांतिदृष्टा और मनीषी हैं। उन्होंने सत्य को जाना है और अब वे उस ज्ञान को मुक्त हस्त बांटते देश के कौने कौने में घूम रहे हैं। उनकी वाणी में प्रभु की झलक मिलती है और उनकी आंखों में अलौकिक का दर्शन होता है। उन्होंने यहां कहा : "परमात्मा तो निकट है। लेकिन पुरोहितों ने उसे दूर बना रखा है। परमात्मा की उपलाब्ध तो अत्यंत सरल है लेकिन धर्मगुरुओं ने उसकी कठिनाई का प्रचार कर रखा है। क्योंकि उसकी दूरी और कठिनाई के बिना उसके नाम पर व्यवसाय नहीं किया जा सकता था। इसी व्यवसाय ने मनुष्य को परमात्मा से तोड रखा है। मैं कहता हूं कि धर्म के नाम पर सारे व्यवसाय बंद होने चाहिये तभी मनुष्य धार्मिक हो सकता है। हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध.... ये सारे संप्रदाय क्या हैं? क्या ये धर्म हैं? नहीं...ये धर्म नहीं, व्यवसाय हैं। धर्म अनेक नहीं हो सकता है। धर्म तो एक ही है। उसका न कोई विशेषण है, न शास्त्र है, न शास्ता है। धर्म तो प्रत्येक का स्वभाव है.... स्वरुप है। धर्म बाहर नहीं है। वह तो भीतर है। और वहां न कोई पुजारी है, न कोई गुरु है, न कोई शास्त्र है।"

"मनुष्य में छिपा है अतिमानव। लेकिन हम उसकी अभिव्यक्ति की भूमिका नहीं जुटा पा रहे हैं।"

★

लोकभारती सणोसरा में प्रवचन :

आचार्यश्री भावनगर से राजकोट जाते समय लोकभारती की प्रार्थना को मान कर थोडी देर के लिये यहां रुके। लोकभारती के विद्यार्थियों के बीच उन्होंने अपने विचार प्रगट किये। उन्होंने कहा : "मनुष्यता कुछ गलत प्रभावों

के नीचे विकृत होती जा रही है। और इन गलत प्रभावों में गलत शिक्षा का प्रभाव सर्वाधिक दूषित और विषाक्त है। शिक्षा महत्वाकांक्षा के ज्वर में मनुष्य को दीक्षित करती है। और यही ज्वर जीवन की सारी हिन्सा, द्वेष और ईर्ष्या का मूल कारण हो जाता है। मैं एक ऐसी शिक्षा का पक्षपाती हूं जो व्यक्ति को आत्म परिष्कार तो सिखाये लेकिन दूसरे से होड नहीं। व्यक्ति में जो छिपा है, वह प्रगट होना ही चाहिये। आत्माभिव्यक्ति ही आनन्द है। लेकिन यह दूसरे की तुलना और स्पर्द्धा में नहीं, वरन् स्वयं के आनन्द और स्वयं के सृजन और स्वयं की खोज में। जिस दिन भी हम ऐसी शिक्षा का आयोजन करने में सफल हो जायेंगे उसी दिन मनुष्यता एक नये सोपान पर प्रतिष्ठित हो जायेगी। मनुष्य में अतिमानव छिपा है, लेकिन हम उसकी अभिव्यक्ति के लिये सम्यक् भूमिका नहीं जुटा पा रहे हैं।"

★

"उठो। जागो। आंखें खोलो और देखो।... देखो : यह कौन तुम्हारे द्वार पर खडा है।"

राजकोट में विराट् ज्ञानसत्रः

आचार्यश्री २८ मार्च की रात्रि राजकोट पधारे। राजकोट की जनता तो उनके प्रेम में पागल हो उठी है। २९, ३०, ३१ मार्च राष्ट्रीय शाला के विशाल प्रांगण में ज्ञानसत्र आयोजित था लेकिन प्रांगण छोटा पड गया। इतने विराट् जनसमूह का आगमन अभूतपूर्व था। और हजारों की संख्या में लोग इतने शांत और मौन बैठते कि पता भी न पडे कि इतने लोग वहां हैं। आचार्यश्री सुबह प्रवचन देते और रात्रि प्रश्नों के उत्तर। उन्होंने प्रथम दिवस "विस्मय" पर, दूसरे दिवस "आनन्द" पर और तीसरे दिन "अद्वैत" पर अपने अनूठे और मौलिक विचार प्रगट किये। उन्होंने कहा कि इन तीन सीढियों को जो पार कर लेता है वह प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है। प्रवचनों के बाद हजारों नर नारियों द्वारा उनके दर्शन और चरण स्पर्श का दृश्य अविस्मरणीय था। लोग मंत्रमुग्ध से उनकी ओर खिचे चले आते। सैकड़ों व्यक्तियों की आंखें आनन्द अश्रुओं से गीली होतीं। उनके सान्निध्य में जैसे व्यक्ति एक क्रांति से ही गुजर जाता है। वह दूसरा ही हो उठता है। सत्य की शक्ति और सामर्थ्य कितनी है, इससे यही पता चलता है। उन्होंने अंतिम दिवस यहां कहा : "प्रभु की बांहें तुम्हारे आलिंगन के लिये सदा तैयार हैं। लेकिन शायद तुम ही तैयार नहीं हो ? जाओ तैयार हो और उठो और जागो और देखो। यह तुम्हारे द्वार पर कौन खडा है ?"

"सत्य की संपदा सबमें बांट देनी है। सत्य की ज्योति से एक एक घर के दिये को जला देना है। यह हो सके इसके लिये आओ और मेरे हाथ मजबूत करो।"

जीवन जागृति केन्द्र राजकोट के कार्यकर्ताओं के बीच :

३० मार्च की दोपहर आचार्यश्री के सान्निध्य में जीवन जागृति केन्द्र राजकोट के कार्यकर्त्ताओं की बैठक हुई। आचार्यश्री ने उनसे कहा : "मैं जो कह रहा हूं उसे एक एक घर और एक एक व्यक्ति के हृदय तक पहुंचा देना है। सत्य की संपदा सबमें बांट देनी है। सत्य की ज्योति से एक एक घर के दिये को जला देना है। यह मैं अकेला कैसे कर सकता हूं ? आओ और मेरे हाथों को मजबूत करो .... हजारों हाथ जब मेरे हाथ बन जायेंगे तभी तो मैं उन सबतक पहुंच सकूंगा जिन्हें कि मेरी जरुरत है।"

"जीवन है एक कला। जीवन बना बनाया नहीं मिलता है। उसे तो निर्मित करना होता है। और जो इस सत्य को भूल जाते हैं, उनका जीवन व्यर्थ हो जाता है।"

कांता विकासगृह राजकोट की छात्राओं के बीच :

३१ मार्च की दोपहर आचार्यश्री ने कांता विकासगृह की छात्राओं को संबोधित किया। उन्होंने कहा : "जीवन एक कला है। जीवन जन्म से ही नहीं मिल जाता है। उसे तो स्वयं ही निर्मित करना होता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं का सृष्टा है। जो जीवन के इस केन्द्रीय तथ्य को भूल जाते हैं, वे एक अविकसित बीज ही रह जाते हैं। बीज जैसे एक संभावना मात्र है। ऐसा ही जन्म भी एक संभावना ही है। बीज को ठीक भूमि, खाद, पानी और रोशनी मिले तो वह अंकुरित होता है, पल्लवित होता है और पुष्पित होता है। ऐसी ही स्थिति जीवन की भी है।"

"विवेक ही विज्ञान है। और अंधविश्वास ही अज्ञान। भारत के चित्त को अंध-विश्वासों से मुक्त करना है और विवेक में प्रतिष्ठित। इससे अधिक महत्वपूर्ण कार्य आज और कोई भी नहीं है।"

राजकोट के पत्रकारों के बीच :

१ अप्रैल की प्रभात आचार्यश्री पत्रकार सम्मेलन में बोले। राजकोट के समस्त पत्रों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। पत्रकारों के प्रश्नों के उत्तर में बोलते हुये आचार्यश्री ने कहा : "मैं भारत का भविष्य बहुत उज्जवल देखता हूं लेकिन जीवन की हमारी धारणाओं में आमूल क्रांति आवश्यक है। हजारों वर्षों से हमारी बुद्धि को अंध विश्वास का जहर पिलाया गया है। अंधविश्वासों की होली जलाये बिना हम एक कदम भी आगे नहीं बढ सकते हैं। अंधविश्वासों से छुटकारा हो तो ही विवेक का जन्म हो सकता है। और विवेक ही अंतत: विज्ञान बनता है।"

जीवन जागृति केन्द्र

व्यवस्थापकीय कार्यालय :
ईस्टर्न चेम्बर रूम नं. २९
पूना स्ट्रीट और आर्गाइल
रोड के कोर्नर पर
बम्बई नं. ९

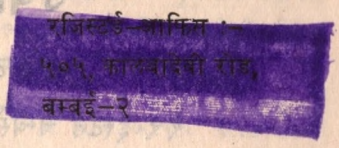

प्रिय मित्रो,

हमें निवेदन करते हुए हर्ष होता है कि उपरोक्त स्थल पर संस्था की ऑफिस के लिए उदारहृदय धर्मप्रेमी श्रीमान सेठ श्री ईश्वरभाई शाह की ओर से सुन्दर जगह प्राप्त हुई है।

अब संस्थाका सारा काम जैसे कि–'पुस्तकें और ज्योतिशिखा' का प्रकाशन और विक्रय, पू. आचार्यश्री के प्रवचन और शिबिरादि की व्यवस्था आदि केन्द्र संबंधित सभी कार्य इस नई ऑफिस से करने का प्रारम्भ हो चुका है। अतः किसी भी कार्य के लिए आप उपरोक्त पते पर स्थिति ऑफिस से संपर्क साधने की कृपा करें।

(२) कतिपय मित्रों की ओर से आचार्यश्री के अलग २ प्रवचनों की टेप सुनने की मांग आई है। यदि वे सुननेवाले मित्रों का अच्छा समूह एकत्र कर सकें तो टेपरेकर्ड सुनाने की व्यवस्था हम कर सकेंगे।

(३) यह संस्था अभी नवपल्लवित संस्था है, इसको दृढ, सक्षम और स्वावलम्बी बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। आप सब इसके प्रेमी हैं। किसी भी कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए तन मन और धन की जरुरत पडती है। आप अपना सहयोग किस रूप में देना चाहेंगे सो हमें कृपया लिखें।

(४) यह संस्था अभी घाटे में चल रही है क्योंकि अभीतक इसके लिए कोई स्थायीफण्ड नहीं हुआ है। "ज्योतिशिखा" के प्रकाशन में भी काफी कर्ज है। अतः हमने ज्योतिशिखा त्रैमासिक में निम्न दरों से विज्ञापन लेना निश्चित किया है। आप अपनी ओर से और मित्रों की ओर से विज्ञापन भिजवाकर इसको आर्थिक चिंता से मुक्त करावें। और थोड़ा भार अपने कंधो पर उठाले।

"ज्योति शिखा"

(हिन्दी त्रैमासिक)

२९ इस्टर्न चेम्बर्स, पूनास्ट्रीट बम्बई नं. ९.

विज्ञापन के दर

(सिर्फ एक लिपि के लिए)

	एक प्रति त्रैमासिक	चार प्रति वार्षिक
A पूरा पृष्ठ	रु. २००-	रु. ७५०-
B आधा पृष्ठ	रु. १२५-	रु. ५००-
C चौथाई पृष्ठ	रु. ७५-	रु. ३००-

१. "ज्योतिशिखा" जून १ सितंबर, दिसंबर और मार्च की १ ली तारीख को प्रकाशित होती है।

२. विज्ञापन ३० दिन पूर्व कार्यालय में पहुंच जाना चाहिये।

३. विज्ञापन पृष्ठकी लंबाई चौडाई– १६ से. मि. ×१० से. मि.

४. ब्लॉक : स्क्रीन ८०.

विज्ञापन नंबर A B C का हमें मंजुर है।

विज्ञापना दाता का नाम _____

पता टेलीफोन _____

પ્રિય મિત્રો,

આશા હૈ, **"જ્યોતિશિખા"** કે અંક આપ કો નિયમિત રૂપ સે મિલ રહે હોંગે. યદિ કિસી કારણવશ કોઈ અંક ન મિલ સકા હો તો કૃપયા સંલગ્ન પત્રિકા દ્વારા હમેં સૂચિત કરેં.

(૨) કુછ ગુજરાતી પાઠકોં કી ઓર સે **"જ્યોતિશિખા"** ગુજરાતી લિપિમેં ભી પ્રકાશિત કરને કી સૂચના આ રહી હૈ. વૈસે ભાષા તો હિન્દી હી રહેગી, લેકિન લિપિ ગુજરાતી હોગી. ઈસસે ગુજરાતી પઢનેવાલોં કો સુવિધા હોગી.

(૩) ગુજરાતી લિપિવાલી **"જ્યોતિશિખા"** કી પ્રતિ આપકો પસંદ હો તો હમેં લિખિયે, અન્યથા હંમેશ કી ભાંતિ આપકો હિન્દી કી પ્રતિયાં હી ભેજી જાયેંગી. ધન્યવાદ સહિત.

સંપાદક : **"જ્યોતિશિખા"**

જીવન જાગૃતિ કેન્દ્ર; ઈસ્ટર્ન ચેમ્બર્સ, રૂમ નં. ૨૯, પૂના સ્ટ્રીટ, ઔર આર્ગાઈલ રોડ કે કોર્નર પર, **બમ્બઈ - ૯**

---

(૧) **"જ્યોતિશિખા"** (ત્રૈમાસિક) મુઝે × હિન્દી મેં / અથવા × ગુજરાતી લિપિ મેં પસંદ હૈ, અત: કૃપયા હમારે લિયે યહી લિપિ રખેં.
(× જો પસંદ ન હો ઉસે કાટ દીજિયે)

(૨) "જ્યોતિશિખા" કે અંક હમેં નિયમિત રૂપ સે મિલ રહે હૈં – / નહીં મિલ રહે હૈં.

(૩) મૈંને તા. સે તા. તક કા "જ્યોતિશિખા" કા ચન્દા (ગ્રાહક શુલ્ક) ભેજા હૈ. રસીદ નં. તા.)

(૪) "જ્યોતિ શિખા" કા વાર્ષિક ચંદા રૂ. મ. ઓ. સે / નગદ ભેજ રહા હું.

ભવદીય,

(હસ્તાક્ષર)

નામ : .....

પતા : .....

जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई द्वारा प्रकाशित
आचार्य रजनीश साहित्य

हिन्दी साहित्य	मू. रुपया
साधनापथ	३–००
क्रांतिबीज	३–००
सिंहनाद	१–५०
अमृतकण	०–६०
अहिंसादर्शन	०–४०
मिट्टी के दिये	३–००
पथ के प्रदीप	४–५०
मैं कौन हूँ	२–००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	०–४०
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–४०
सूर्य की ओर उड़ान	१–००
प्रेम के पंख	०–७५
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१–२५
अज्ञात की ओर	१–००
नये संकेत	१–७५

मराठी साहित्य	
साधनापथ	३–००
सिंहनाद	२–००
अहिंसादर्शन	०–५०
अमृतकण	०–५०
क्रांतिबीज	२–५०
प्रेमाचे पंख	०–७५

गुजराती साहित्य	
साधनापथ	२–००
स्पेशल प्रति	३–००
क्रांतिबीज	२–००
स्पेशल प्रति	२–५०
माटी ना दिवा	३–००
स्पेशल प्रति	३–५०
पंथ ना प्रदीप	३–००
सिंहनाद	१–२५
नवा संकेत	१–७५
अमृतकण	०–५०
अहिंसादर्शन	०–५०
केटलीक ज्योतिर्मय क्षण	०–७५
अज्ञात प्रति	२–००
नवा मनुष्य ना जन्म नी दिशा	०–७५
हुं कोण छुं	२–००
सत्य ना अज्ञात सागर नुं आमंत्रण	१–५०
सूर्य तरफनुं उड्डयन	१–००

अंग्रेजी साहित्य	
पथ आफ सेल्फ रियेलायजेशन	२–२५

पुस्तकें मिलने का पता :

जीवन जागृति केन्द्र,

ईस्टर्न चेम्बर, ३ रा माला, पूना स्ट्रीट, बम्बई–९,

बम्बई में बिरला क्रीडा केन्द्र में जैन सोशल ग्रुप द्वारा आयोजित सभा में व्याख्यान देते हुए आचार्य श्री रजनीशजी

१

मनुष्य के
पुनरुत्थान
मनुष्यके आध्यात्मि
आध्यात्मिक पुनरुत्थान के सम
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थ
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्यात्मि
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थान
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥
ाध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्था
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्यात्मि
लिए समर्पित ॥ मनुष्यके आध
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लि
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्याति
पुनरुत्थानके लिए समर्पित
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरु
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लि
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्याति
लिए समर्पित ॥ मनुष्यके आध
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥ मन
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लि
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्या
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरु
पुनरुत्थानके के लिए समर्पि
समर्पित ॥ मनुष्यके आ
लिए स

जीवन जागृति केन्द्र